

वक्तव्य

योगसूत्र भगवान् पतंजलि ऋषि रो वणायो धको है । यो समझवा में घणोकठिन पड़े है । या देख महाराज साहब चतुरसिंहजी खड़ी बोली में प्रश्न और उत्तर रा रूप में एक टीका लिखी । मेवाड़ी भाषा में भी टीका लिखवारो विचार कर एक नानी (छोटी) टीका लिखी, जा अणी पोथी में दूजा नम्बर री है । बाद में भाष्यरा रूप में एक दही लम्बी टीका लिखी और साथ ही केवल शब्दों रो अर्थ हीज ब्हियो, अशी नानी टीका भी लिखी, जा अठे तीजा, ने पे'ला नम्बर री है । पण, महाराज साहब ने अणों शूँ भी संतोष नी ब्हियो, ने एक नवी टीका लिखवा रो आरम्भ की धो । जणी ने निर्वाण लाम रे तीन दिन पे'लों तक लिखता रिया । परन्तु वा दूजा पाद रा चवदसों सूत्र तक हीज लिखाय शकी ।

महाराज साहब री पुस्तकों रो संपादन प० शोभालाल जी शास्त्री करता हा । परन्तु वर्णों रे स्वर्गवास घे'जाया रे बाद, वो काम भूरे सिर पर आय पड़्यो । मालकों रो लोकोपकारी काम समझ सा० आखा गृहस्थरो भार तथा अनेक विज्ञ बाधा घेवा पर भी सेवा करवा रो विचार एद कर लीदो ।

प्रथम तो मेवाड़ी भाषा रो व्याकरण हीज आज तक नी वण्यों । ई वास्ते बन्धो सही है, ने बन्धो खोटो है, अणी रो निश्चय हीज नी घे' शके । अणारे सिवाय दूजो घे'ई सन्धन नी, के जणी शूँ कुछ सहायता मिल शके । भाषा ने स्थिर बरबारे लागने, ने वर्णों रा यथार्थ उच्चारण रे दा त बरबारे निशाण नया घणाघणा पट्या है । जणी में अभ्यास ना घेवा रा कारण ई बचावित् घणा खरों ने जयखार्द जरूर आदेगा । एषा बीदों पर्र जाय ।

४—श्वास ने निकालणो ने खेचणो जां प्राण रो काम है, अणी शू भी मन शुद्धहे' ने ठे'रवा लाग जाय है। अणी ने प्राणायाम भी के' है। यो भी सहज ने स्वाभाविक उपाय, मन ने सुधार ने ठे'रवा रे लायक करवा रो है। अजाँ दो ही उपार्याँ में सहजता है अर्थात् व्हे'ता ही सवा रे ही रे' है। केवल शारण (तळाव शू पाणी खेता मे ले जावारो धोरा) रो पाणी क्यारे वाळदेणो है अर्थात् यू नी, ने यू, जाण लेणो, ने पछे तो स्वत. ही व्हेवा लाग जाय। क्यूँके स्वाभाविक ही स्वभाव है। वो स्वभाव पटकवा मे कई अवकाई? अस्वाभाविक स्वभाव ही जदी अश्यो करलीयो, जदी व्हे'ती वात रो कई भगडो।

सू०—विषयवतो वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धिनी ॥३५॥

१—कोई अनोखी चीज दीखवा लाग जाय अणी शू मन ठे'र जाय है।

२—मायला अनोखा सुख दिखवा लाग जाय, तो भी मन एक कानी लागे है (अणी ने विषयवती प्रवृत्ति के' है।

३—मन रो निर्मळ व्हे'णो ज्यू भक्ति रो उपयोगी है यू ही मनरो ठे'रणो भी भक्ति रो उपयोगी है। निर्मळ विह्यां विना मन

(५) प्र०—हे भगधन् ! और भी कोई इस अभ्यास का (तर्ज) है या नहीं ?

उ०—हे प्रिय ! विषयों में ही चित्त चञ्चल रहा करता है। जब

ॐ श्री

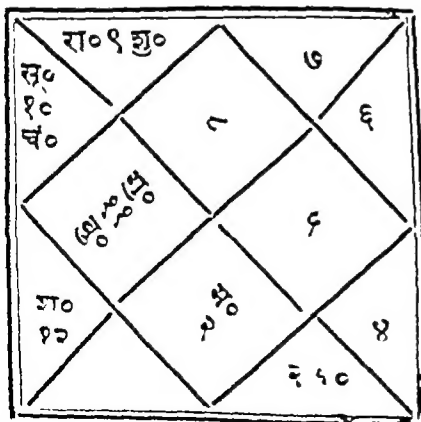
महाराज साहब श्री चतुरसिंहजी रो संचित परिचय ।

—ॐ—

आप, कैलाशवासी महाराणा साहब श्री फतहसिंहजी रा
बडा भाई करजाली महाराज साहब श्री सूरतसिंहजी रा चौथा
कुँवर हा । आपरो जन्म विक्रम संवत् १९३६ माघ कृष्णा १४
गोमवार रे दिन ण्हियो* ।

*श्रीगीताजी री मेवाडी भापा री टीका री भूमिका में महाराज
साहब री छप गई है । वर्तमान करजाली महाराज साहब श्री
लक्ष्मणसिंहजी शूँ प्रार्थना कर असली जन्म-पत्री देखी, तो
वणी में माघ कृष्णा १४ मिली । सज्जना री जाणकारी रे वास्ते
वा पूरी जन्म कुण्डली हीज दे देणी भूँ ठीक समझूँ हूँ ।

जन्म लग्नम् ७।२।४०।१२



स्वस्ति श्री विक्रम संवत्
१९३६ शाके १८०१ प्रवत्
माने माघकृष्णा १४
चन्द्रे घटी २४। पल १५
श्रवणनक्षत्रे घटी ५५।
पल २० इष्ट घटी ४५।
पल १४ समये ९।२८।३४।
२९ श्री सूर्ये जन्म०.

रावर लिखता हीज रिया । विक्रम सवत् १९८६ अषाढ कृष्ण ९
दिन परभाते ९ वाज्याँ आप योगियाँ री गति ने प्राप्त ब्हिया ।

निर्वाग लाभ रे कुछ दिन पे'ली आप एक भजन वणायो
ये । जणी रा अन्तरा दो चरण ई है —

“चातुर चोर चाकरी रो पण, आखर ये अपणाय लियो ।
जगदीश्वर जीवाय दियो, थे ही थारो काम कियो ॥”

गिरिधरलाल शास्त्री



वशपरंपरागत सस्कारों का प्रभाव शूँ आपरो भुकाव भक्ति री तरफ पे'लीं शूँ ही हो। पण, विक्रमसंवत् १९६४ मे आपरी घर्मपत्नी जी रो, देहान्त व्हे' जावा शूँ आप ने पूरी निश्चिन्तता व्हे'गई।

योग सीखवारी इच्छा शूँ आप नर्मदा नदी पर प्रसिद्ध योगिराज कमल भारती जी रे पास पवारया। परन्तु वहाँ आप ने ठा० सा० गुमानमिह जी (बाठरडा) रे पास शूँ योगाभ्यास करवारी आज्ञा दीधी। वहाँ शूँ आपने राजराजेश्वर योग गो उपदेश मिल्यो।

वेदान्त, माग्य, योग आदि दर्शन शास्त्रों रो तत्व आप भली भाँति समझ लीधी हो, ने अणों रे सिवाय कुराण, बाइबल, जैन शास्त्र आदि में पण पुरो दगल हो।

ज्यादातर आप सुरेश्वर, ने नौवा गाँव मे विराजता हा। नौवा मे तो गाम रे बागणे मगरी रे मथारे एक कच्ची कुटी बणवाय लीगी थी। वहाँ मे विक्रम संवत् १९७८ पौष शुक्ल ३ गविवार र दिन आपने आत्मसाक्षात्कार चिह्नियो। वणीज मौका पर आप अतर्कपर्यायी, तुली-अष्टक, ने अनुभव प्रकाश लिख्यो। आप सदा हँसमुख र ता हा। शरीर पर रेजा गो वुगलबंदी, न माथापर रेजा गो फेंटा धारण करना हा।

बागवत आपने अतरो प्यागे हो, के अणों पर आप चार रेवते मे, ने एक चढ़ा चाँगी मे टाँका लिग्या। छंला दिताँ मे आपने तर्क, अतिरिक्त बण गई थी, ने वेठवारी शक्ति भी नी गी' थी। ने भी आप टाँका निर्वोगलाभ रे तीन दिन पे'लीं तई

बराबर लिखता हीज रिया । विक्रम संवत् १९८६ अषाढ़ कृष्ण ९
रे दिन परभाते ९ बाज्याँ आप योगियाँ री गति ने प्राप्त ब्हिया ।

सिर्वांग लाभ रे कुछ दिन पे'ली आप एक भजन बणायो
हो । जणी रा अन्तरा दो चरण ई है —

“चातुर चोर चाकरी रो पण, आखर थे अपणाय लियो ।
जगदीश्वर जीवाय दियो, थें ही थारो काम कियो ॥”

गिरिधरलाल शास्त्री





योगिय—

स्वर्गीय—महागुरु साहब श्री चतुर्मुख जी

॥ श्रोः ॥

योगशास्त्र पे विचार

(भूमिका)

योग शब्द से अरथ जुडवो व्हे' है, ज्यू-

“मन कू जोडे ब्रह्म मे गुमना योग पिछाण ।”

अणी से विचार जणी शास्त्र में व्हे' वो योगशास्त्र वाजे है । योग रा ग्रन्थ नरी ई तरे' रा व्हेवा पे भी पातञ्जल योगशास्त्र सब में शिरोमणि है । फ्यूके अणी में थोडा में ही सब तरे' रा योगाँ से मुख्य मुख्य बातें आय गई है । छै ही शास्त्राँ में भी योगशास्त्र हीज मुख्य समझणे चावे । फ्यूके ई से सर्वाँ ही आदर कीधो है ।

पूर्ण मीमांसा (कर्मशास्त्र)-वाळा के'वे के दानत शुद्ध रात्रणी, न्याय ने वैशेषिक (विचार शास्त्र)-वाळा के'वे के सब तत्वाँ रा छोटा अश (परमाणु) रे' जावे है, ने वणाँ शू ही पाछो समार वणजावे, ने वी परमाणु हैं । ईरी शास्त्र योगी दे' है । फ्यूके वी गंग्याँ ने हीज दिखे हैं । उत्तर मीमांसा (ब्रह्मशास्त्र) के'वे के निदिध्यासन (ब्रह्म में स्थिर व्हे' जाणो) ही मुख्य है, ने ई ने हीज योगी समाधि योग के'वे हैं, ने साख्य* तो योगी रा विचार हीज है-अनुभव हैं ।

*सारथ (सब विचार) ने योग, तो एक हीज है ज्यू-“एक ही साख्य ने योग दीखे दीये वणी ज ने ।” गीता—

यू सब शास्त्र, वेद, पुराण, मत (पथ) कणी-ने-कणी तरे' शूँ योग रो आदर करे हीज है, ने ससार में भी जीव ठकाणे राख्याँ विना कोई काम आछो नी व्हे' शके है । ईं शूँ दा वात शाबत व्ही' के जो, मन ठकाणे जतरो वत्तो राखेगा, वतरी ही वणी री वत्ताई है । ज्युं-‘जो मन जीत्यो तो सब जग जी त्यो।’

“मन रे हारयाँ हार है मन रे जीत्याँ जीत । परब्रह्म ने पावणो मनरी ही परतीत ॥”

‘बँध्यो गडक (मन) ना र वरोवर ने बँध्यो ना’र (आत्मा) गडक (मन) वरोवर ।’

या हीज वात अठे योगशास्त्र में भी पाद १ सूत्र ३-४ में भी कही है । दूसरा मत ने शास्त्र, सब अन्दाज बाँधे, पण योगशास्त्र के’ वे के यूँ अठोठो ने पराधीन आँधा री नाईं लाकड़ी रे आधार पे फ्यूं चालणो । जो है, तो देख फ्यूं नी लेणो । देख्याँ विना ही मान लेणो तो एक तरे’ रो भे’म है, के ज्यो मोका पे धोखो देवेगा, विना देख्याँ मान बैठणो नी मानवा वरोवर है । यूँ तो नी व्हे’ र्घीने भी मानणी आय जायगा । ईं शूँ देखो ने मानो, नी दिखे, र्घी ने मती मानो । रही दिखवा री वात सो तो सब ही जाणे है के स्वाद आँख शूँ नी दिखे तो भी स्वाद है, ने वो जीभ शूँ दिख है, परन्तु स्वाद है ईं में कई भे’म नी । फ्यूंके जीभ शूँ चोड़े दिखे रियो है । यूँ ही कान शूँ रङ्ग नी दिखे, तो भी आँख शूँ चोड़े दिख रियो है । यूँ ही एक वस्तु दूसरी वस्तु ज्यूं नी दिखे, परन्तु दिखवा में कोई सन्देह नी ।, अणी तरे’ शूँ वा ईं शूँ भी चोड़े देवनेणो, यो योग रो सिद्धान्त है, ने योग स्पष्ट के वे के देखो ने मानो, स्पष्ट (शाने) देखो, निस्सन्देह देखो, या योग री

शच्छा मनख मानवा ने तयार व्हे'जाता तो धर्म रा नाम शूँ जो आज अतरा भयङ्कर अधर्म फेल रिया है, वणा रो नाम भी नी रे'तो । राम ! राम !! धर्म रे वास्ते मनख ने मनख मारे राक्षस री नाई । एक मतवाळा पे दूजो मतवाळा कट्थ्याँ करे । ठग, पाखडी, पे मनख विश्वास करे, मन में शान्ति नी आवे, भ्रान्ति नी मटे, वो भी धर्म वाजे, जदी अधर्म रे माथे कई शींगड़ा व्हे'गा ।

योग के'रियो है, देखो ने मानो । नी दिखे तो देखवा रो उपाय करो । जरूर दिखेगा । साफ़ दिखेगा । है, तो दिखेगा हीज । ई में भे'म भट्का री कई बात नी है । उपाय भी अस्यो नी के 'चट्टी आँगळा रा नख शूँ वेंत भरघो खाडो खोदे ने भाँपण्याँ शूँ भराव निकाले तो वेंत्यो मनख निकळे ।' व्हे'ती बात है—काम में आय री' है—उस ही बात है, असम्भव नी है । पण कराँ कई ! टोकराँ घजावताँ वजावताँ हाथ ठठ व्हे'गया चाँग देताँ देताँ गळा पटगयो, तीरथाँ में फरता फरताँ छाला पड़ गया, ने भूखाँ मरताँ मरताँ शरीर शूख गयो, अवे कई कराँ, जी शूँ दिखे । देखवारे वास्ते करो दिखवारे वास्ते मती करो । परत, शाख्र में तो कियो हूँ सो बीधो, तो भी कई नी चिहियो, जदी अवे योगशाख्र हीज त्यांचो है, यो म्हाने भरोशो कूँकर आवे ?

शाख्र घांचताँ वांचताँ तो आँखाँ परी गई, शुणताँ शुणताँ पांताँ रा कोकरवा फूटगया, म्हाने तो अवे शाख्र पे भी भरोशो कोय नी । म्हाने तो नास्तिकमत दाय लागो-खूब खावणो, पीवणो, मोजमजा उटावणा, मरघाँ पळे री कणी देखी है । अणी में योग री काँ राय है ? योग री तो वा हीज एक अटल राय है, के कणी भी पात री दंरया पे'ली राय कायम मती करो । यूँ भी मती के'वो

के कोय नी' ने यूँ भी मती के'वो के है । ज्यूँ 'नाई नाई केश कतराक ।
 व्हे'गा ? के व्हे'गा शो आगे आगे'गा योग के' रियो है-आगे दधो,
 एडी रो जगा' अगोठो मती आवा दो । पण बराबर आगे आगे
 वधना जावो । हरण री नाई फाल मत चूको । साँच री आडी
 वधोगा तो साँच ने अचर्य धू'रे धडे पावोगा । पण साँच री
 पे'चाण कूँकर पडे गा । बाळरुपणा में गुलीडट्या हीज में साँच
 ने तृप्ति दिखती ही, ने जवानी में और वात सर्हा जची, ने अवे
 और ही साँच दिखे है । यूँ ही एक दिन या भी झूठी निकल
 जायगा । अटे तो 'जर्णा रा व्याव वर्णा रा गीत,' वाली वात
 दिग री' है । माथो दुखे ने तो जाणे ससार में दुख ही दुख है,
 ने पाछा आछा ब्हिया, ने जाणे सुख ही सुख है । पण असल में
 है, कर्द जर्णा री खबर नी ।

योग के'वे के साच वो हीज है के—

(झूठ ने होवणो नी ने साच रो मटणो नहीं । अणा रो
 नगणो कीधो दोयां रो ग्रह ज्ञानियां ॥ ज्यो सवी' जवी में
 व्यायो जाण वो हीज नी मटे । वणी अखट रो नाश कणी शू
 भी वं'के ॥) जर्णा लाभ वचे वत्तो और लाभ गणे नहीं ।
 जर्णा में टे'र ने मोटा दुख शू भी डगे नहीं । योग नाम
 अर्णा में दो वियोग दुख में मरे । जरूर साधणो योग नाम नी
 बदरावणो ।

शतरज में जर्णा खिताडी ने पांच छै चालां अगाडी सूक
 जय, वर्णा ने नयो ग्रीखटड के'वे के बस मान है । परत मात
 ने वो हीज गुट व्हे' रियो है । अवे वीं ने अगाऊ दिखी सो
 कणी शू दिखी ने वर्णा ने नी दिखी सो कणी शू नी-दिखी ।

ई शू जाणी जाय है, के आँख, नाक, चामडी, कान, जीभ, शिवाय भी जाणवा री इन्द्रियाँ है। कणी ने साँचो सपनो आवे, वणी रो दिखवो कणी शू व्हे' ? यू अणी दिखवा शिवाय भी नरोई दिखवो है, ने ज्यू भूवा ने कवा कवा में तृप्ति आवती जाय, ज्यू योगी ने भी विश्वास आवनो जाय, ने आगे वधतो जाय। पण कतराई वच्चे भी रुक जाय है।

योग के वे केई भी झूठी वाता है। वणी ने नरी आगे री चाल दिख री 'है। वो पूरा साँच पे लेजाय रियो है। ई पडतला रा हीज काम है, के टोकर बजावा में हीज पीढ्या विताय दीधी, ने बाँग देवा में हीज पूरा व्हे' गया, ने कोई के'वे—“ऊठो ! आगे वधो, तो लडराने तयार व्हेवे। मनख आलश रो पन्न करे। योग के वे, गेला में मती बैठ—आगे वध”। मनख के'वे “बस, राज मिलयो ने कृतकृत्य ब्हिया।” कोई के'वे—“स्त्री मली ने जनम मुययो। कोई बेटो, कोई धन, ने कोई जश। कोई कठे ही रुक जावे, कोई कठे ही।

योग के वे, के आगे पूने विश्रान है। यो तो बाँ गियो, मान बियो। सोखता पोखता राने ऊठ रो, घोडा रो शूखो हाडक्यो दे' री' है, ने हीरो के' री' है ने दिख रियो है, पण परमान खर पड़ेगा सोखता मुखाय देगा। मनख के'वे प्रत्यक्ष मानू ह। योग के वे यो प्रत्यक्ष नी है, सही नी है, थोडो आगे वध, अरार बहरी खुलेगा, पेर आगे वध, ई री भी कहरी खुलेगा। मे'नत नी आराम है, अभ्यास नी व्हेवा शू मे'नत ज्यू दिसे है।

पे ली ज्यो जे'र ज्यू लगे लगे अमृत ज्यू पड़े। आँदरी शुद्ध बुद्धी रो बाँ मुख सतोगुणी।—

खावो, पीवो, मजा उड़ावो, सो तो ठीक, पण ई मजा थाने नी उढाय दे । 'रांड बिह्यां केड़े मत आई कई काम री । से'ज है नजी क है, कुछ ध्यान दो, थाँशू कई छोडावाँ नी । परन्त-

“अठे वठे कठे ही भी वणी रो नाश होय नी । भलाई करने भी ई बुराई पाय कोइ नी ।”

बुरी आदत छोड दो ! सही बात ने शोधवा में आपणाँ अनुभव ने बधावा ने त्पार व्हे' जावो, नी तो ई घोडा ने ई चौगान ।

ज्या साँच, पाछी भूठ नी व्हे' वा हीज साँच है, ने ज्या कोई थोड़ी देर सही दिखे ने पाछी भूठी दिख जाय, वा तो भूठ हीज है । ज्यू

“बारला मुख सारा ही दुखाँ री हीज खान है । वणे ने घगटे यां में धानधान रमे नहीं ।”

जदी आपाँ साँच सही बात जाणा वणी ने ही मानणी चावा, न यणी शू ही राजी व्हाँ । परत पाछी वा हीज भूठी निकळा जाय, जदी फेर एक दूसरी ने साँची मानलाँ, पण आखर में सब भूठ दिख जावे, जदी जीव घबराय जाय । फ्यूँके-

“भूट मे हो वणो नी' ने साँच रो मटणो नहीं । अणाँ रा नरणो कीधो दोयाँ रो तत्वमानियाँ ।”

यू ही जदी साँच ने आपणो मन शाघ रियो है, तो आपाँ ने चावे के अस्या साँच रो पत्तो लगावाँ, के ज्या कधी भूठी व्हे' हीज नी शके ।

ज्यू कोई वळावो साथ मे रे'ने ठकाणो पुगाय दे, यूं ही योग भी वणी साँच तक पुगाय देवा रो वळावो है। आज योग रे वास्ते मनख भटकिया है, कोई।

“दोई खोई रे जोगडा मुद्रा ने आदेश। नहीं कराया कातरया, नहीं कराया केश।”

ज्यू-‘घर रा रिया ने घाट रा, वी वेंडो रा वाटका री नाईं व्हे’ रिया है।’ कोई रोगी ने जोगी माने है, तो कोई ढोंगी ने।

यू नराई पाखड चाल गया, ने अह्वान शू लोग आँधा व्हे’ रिया है। कतराई योग रा एक मुकाम पे पूग ने ही निरांत कर ने बैठ गया, तो कतराही योग रो नाम शुणता ही भडके है। योग-शास्त्र रे रे’ताँ यू भटका खाणो शूभता सूरदास व्हे’णा है।

अणी योग शास्त्र रो वेदव्यासजी महाराज अर्थ समझायो। वणी ने देख ने ई ने मेवाड री बोली में बरवा रो मन व्हे’ गयो। मेवाड आखी ही तीरथ ज्यू है, पे’ली अटे बडा बड़ा योगी व्हे’ गया है। ज्यू-(श्रद्धीऋषि) सिंगीरिप जी, भिंडीरिप जी, विभाडकरिपि, (मांडव्य) मांडव, आदि नरा ही जणाँ। मेवाड में जठी देखो बठी ही, मन ने शान्ति मले, वशी जगा दिखे। जाणो, मेवाड कर्त, ऋषियाँ रो हीज आश्रय है। अठा रा राणा हर्म्मीर, कुम्भा, समरसी, प्रतापसिंह जी, राजसिंह जी, जत्या राजा और मीराँमाता जश्याराणी, ने कृष्णाकुमारी घाई जशी पुत्रियाँ व्ही’ है, वणी री ज्यादा के’ वा शू के’वा री बात छेटी पड जायगा। परत महाराणा राजसिंहजी औरङ्गजेब पाखडी रे जो बागद लिख्यो घा ने देखवा शू चोड़े दिखे है, के अठा रा राजा भी योगशास्त्र रा कतरा आह्वा जाणवार दिह्या है।

अठे कणी मत शू खार नी है, श्रोनाथजी री जशी भावभक्ति है वरी ही श्रोएकलिङ्गजो रा है, वशी ही श्रीऋषभदेवजी री है, ने जस्यो मुसळमान फकार रो आदर है, तो वर्या ही जैनी रो, ने सन्यासी रो है, मुसळमानां शू लडाइ व्हाँ तो भी वणां रा धर्म पे कठे ही खार ना' काधा । मूर्खता शू चावे मुसळमानां अणी वान पे ध्यान नी दीधो, पण अठे एक ही बात पे ध्यान रियो, के धर्म परमान्ना रो है । वणी रा नरा ही बाण्णा है । जो कोई पागडा मूर्ख वणी में जावावाळा ने रोके, तो वणी ने दण्ड देणो भी एक धर्म री रक्षा करणो है, सबों रो तो खास कर ने यो सिक्कान हीज देणो चावे ।

अस्या मतवां ने जणी मेवाड जनम दीधो, अशी मेवाड री पाली म योगशास्त्र जन्म देणो चावे, ने जतरे कोई महात्मा ई में दर्शनी के पे पतरे महारी कार्त्तोगेली बुद्धि माफक ही कईक निगणो अनुचिन ना है ।

युं ता सब वेद, पुराण, शास्त्र, मत, पन्थ, अणी री हीज दीया है । युं के ई सब अनुभव री नीय पे है, ने अनुभव ज्यो योनी रो हीज दे' ह, ने बिना अनुभव रो तो कोई भी काम सही ना उदीज क्रियो है, के 'योग रो मार, ने मसार रो मार है ।'

योग सब ही धर्मा रो राजा है । अणी रो ही एकम अनेक पे री शोर्ता में भागाना करे, ने फैलायो गयो है । मायांतर नववाराज योग री भावा समझता हा, ने वरां, लोगां ने नमस्कार भी करी, पण आख्य थोडा ने हीज समझवा दीया । समझवा ई एउ निया बाकी ग वे'क गिया ।

ज्यू—

“ईसा महमद एक सब, देखो। सहित विवेक ।

कच्चे कच्चे एक है, पक्के पक्के एक ।”

“सा सयाण एक। मत, एक अयाण अनेक मत ।”

चावे कुराण व्हो, चावे पुराण, अजील, सूत्र, वाणी, वेद, बहिष्ता सब महाराजा, योगरी आह्वा रा आंपणी आंपणी बोली में अनुवाद कीधा है। अणीज वास्ते योग रो कणी भी मत (पथ) शू विरोध नी हे। ई सर्वाँ री भाषा समझे है। पण अणारी भाषा नी समझे, वी आपस में लडे है, ने झगडा कर रिया है।

महाराज ! योग सवा ने के रियो है,—अरे थें आळस रो कियो मान, क्यूँ लडरिया हो। म्हुँ साफ साफ चोडे के रियो हूँ के मन ने कावू में करो। थें उलटा आळस रे वे कावा में आय, मत रा कावू में बह रिया हो। देखो म्हारा हुकम रा भाषान्तर, घाटे लिख्यो है के मनरा कावू में वही ज्यो। थें झूठो पाखड कर रिया हो। म्ह शाख रा हुकम पे चाल रिया हाँ, ने चालो हो आळस रा हुकम पर। म्ही ईने कावू में करवा री तर्जा, सो अनत प्रकार री है। पण थें खाली तर्ज ही पकड़ रिया हो, पण मर्ज ने छोट रिया हो। तर्ज रों मर्ज पकड़ो, वारणो मांय ने आनन्द ही आनन्द छाव जायगा। वशी स्पष्ट आह्वा है, ई ने भूल जावा थूँ हीज नास्तिकता फैली। ज्यू

“दिन आर्थ्यो थाका घळद, पियां न क्यारो एक ।

पच म पाणी। फूटग्यो हिया फूट भट देख ।”

आज मेवाटी भाषा में वणों योग मा'राज री आज्ञा रो अनुवाद पर्यारो विचार कीधो है। अनुवादक में अतरी योग्यता

नी है के योग महाराज री'ज आझा रो अनुवाद करे, पण अनुवाद रो भी अनुवाद करणो मुशकिल हो'रियो है, तो भी व्यूँ दूठरी चतारो महा-सुन्दर तसबीर उतारे यूँ ही यो म्हारो काम है सो सज्जन सुधार लेगा ने क्षमा करेगा ।

योग साधना



श्री काना जी साख्य (गुमानसिंह जी बाठरडा बाळा) रें यो सिद्धान्त है, के कर्म तीन तरे 'रा हो' है,—शुक्ल, कृष्ण, मिश्र, जर्गी में कृष्ण ने मिश्र शूँ त्यागणा, ने मिश्र ने शुक्ल शूँ त्यागणा ओंग ई शुक्ल भी योग शूँ छूटणा चावे, या ही ज बात गीता जी में “अनिष्टमिष्टं मिश्रञ्च” शूँ कही है । शुक्ल कर्म योगाग रें साधन ही है । अर्णी शूँ योग-साधन दृढ ह्वे' ने कर णो : अर्णी में या गणर्णी के कर्म तो अवश्य करणा चावे । ज्ञान वं'या अज्ञाना, या बात—“पावनानि मनीषिणाम्” आदि शूँ श्री भगवान जोर दे ने दृढत्व कीयो हं । क्युँ के अर्णी बिना गति बन्द हं ने योगी निरपयोगी ह्वे' ने साधारण भाव शूँ भी गि जय है । जर्गी त्र शूँ महान्मा अर्णी याना में अत रो जोर देवे । क्युँ के सिद्धान्त री जननी साधना है ।

(प्राणायाम रहस्य)



श्वास प्रश्वास शूँ इन्द्रिया चेतने अर्थात् इन्द्रियां ने ज्ञान वहेवे
 ने इन्द्रियों ने ज्ञान वहेवा शूँ मन वणे । क्यूँ के इन्द्रियाँ रो
 भट भट गरणोटो खावा रो नाम हीज मन है । मन शूँ आखो
 ससार वणे अर्थात् निश्चय वहेवे, निश्चय शूँ ही ससार है ।
 पाछो श्रवणो चालवा शूँ यो मित्रे । निश्चय मन में, मन इन्द्रियाँ
 में ने इन्द्रियाँ शांस में, शांस प्रकृति में मिले जदी शांस वा
 इन्द्रियाँ वा निश्चय आदि कई भी निखाळश दीख जाय । जदी'ज
 सब छूट मुक्ति वहे' जाय है, ने ई रो उपाय, शांस में निश्चय
 शूँ मन ने मिलावणो है । यो, प्राणायाम करवा शूँ वहे' है ।
 प्राणायाम री विधि योगदर्शन वा भाष्य में देखणी ।



॥ अथ योग सूत्र ॥

॥ दोहा ॥

नमो अलख गुरु प्रगट री, दया दृष्टि बिन अन्त ।
घणा कल्प रो उलट ज्या, करे पलक रो पंध ॥१॥

सूत्र—अथ योगाऽनुशानम् ॥१॥

१—अथ श्री योग शास्त्र प्रारम्भ

२—या अखण्ड महा मुख री शमभ प्रारंभ व्हे' है ।

३—ई रो खुलाशो यू भी व्हे' है के परमात्मा शूँ मिलवा री
रीत रो नाम योग शास्त्र है, वणी रो आरंभ करा हा अर्थात्
परमात्मा शूँ धूँकर मिलणी या बात अणी शास्त्र में बताई जायगा ।
'योगानुशानम्' शब्द जो संस्कृत मे है, वणी रो अर्थ व्हे' है
मिलवा री पतवाणी थकी बात अर्थात् शुणी शुणाई नी, पण धूरे
धट देग ने कही जाय है अर्थात् परमात्मा शूँ मिलवारी सही रीत
देगरी 'यकी वी' जाय है । अठे एक बात याद राखवा री है के

४—प्रदम—हे गुरो ! अखण्ड सुख कैसे मिले, और सब दुःख कैसे मिटे !

दसर—हे वल ! भव योगशास्त्र प्रारंभ किया जाता है ।

नोट—(५६ प्रदनासर ही योगशास्त्र है २ करे प्रकार से हो

परमात्मा शूँ मिलवा री रीत हीज मतलबो नी' है। दूज्यूँ तो रीती रीत हीज है। कोई ज्यो यूँ के'वे के कोई मतलब री रीत कहो जी ग फायदो व्हे'। परमात्मा रे मिलवा री रीत ने कर्ड-करा। तो अठे या याद राखणी चावे के दु ख ने बिलकुल मिटावणो ने सदा सुख पावणो हीज फायदो है। सो फायदो परमात्मा शूँ मिल्या बिना पूरो नी मिने। क्यूँ के दु ख मिटे ने पाछो व्हे' जाय है। सुख व्हे' ने पाछो मट जाय है। ई रे लिये परमात्मा शूँ मिलवो हीज एक अश्यो है के दु ग कदी व्हे' ही नी, ने सुख कदी मिटे ही नी। ई पे गीता-जी में हकम कीयो है के

“मती तो बुद्धि या हीज, योग री जाण अर्जुण ।
चन्द्राँ री नरी बुद्ध्या शाखा डाल्या अनन्त री ।
तरी लाभ वचे वत्तो और लाभ गणे नहीं ।
जणी में ठे'र ने म्हाटा दु ग शूँ भी डगे नहीं ॥
योग नाम अणी रो या वियोग दु ग रो करे ॥”

पण गीता तो नरी तरे री है। शास्त्र, पुराण, मत, पंथा रो ना पर ही नती। हाल तो योग ग नाम शूँ ही नरी तरे रा योग वाते है। जरी ज्यो रीत मही, वणी पे के'वे है।

५—दंगी सब ही है, या बात है हीज, तो भी कोई नी जणे अणी वास्ते मानी बात ने जणाय देवा रे वास्ते अणी योग शास्त्र रो आरम्भ है। ने शास्त्र रो मतलब

योग प्राप्त होना है। इस बात को समझना चाहे, उसे योग शास्त्र समझ लेना आदिये। इसी से सब दु ख मिट कर सम्पूर्ण सुख मिलना है।

ही यो हीज है । नी' व्हे' सो केवे तो भूठो ने व्हे' सो के'णो पुनरुक्ती (व्यर्थ) व्हे' जाय । अणी वास्ते है, तो खरी, पण वणी ने ऊँधो जाण लीधो—विपर्यय कर लीधो सो पाछो है, ज्यूँ जणाय देणो ही शास्त्र है । अणी वास्ते यो शासन हीज नी' है पण अनुशासन है । जणी रो हीज उपदेश है अर्थात् विपर्यय ने समझावणो है । अणी'ज वास्ते या मवा री चापोती है । योग रो अर्थ है—दुखा शूँ अलग (न्यारा) व्हे' जाणो । यो ही शान्ति रो अर्थ है, ने यो तो स्वाभाविक ही सदा सबदा स्वधर्म है हीज, या बात ही की' है । सहजावस्था योग रो दूसरो नाम है । अणी मे जत री वणावट वत री ही छेटी ।

सू०—योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥२॥

१—योग चित्त री वृत्त्याँ रो रुकवो है ।

२—मन री तरगा ठे'र जाणो ही महासुख है । अणी ने ही योग के' है, ने मन री तरगाँ ने चित्तवृत्तियों के' है ।

३—योग चित्त री वृत्त्याँ रो रुकवो है । सुरता रो धिर व्हे' जाणो हीज योग है । सुरता जगा' जगा भटकती फिरे सो ही वणी रो वृत्तियों बाजे है । ने वी ठे'र जाय यो ही योग बाजे है । अणी बिना रा मन (पय) कोई नी' है अर्थात् सुरता ठिकारो नी राख गी

या कोई मन नी' के' । अणी बात पे सर्वाँ ने ओशान राखणी चावे । दूज्युँ

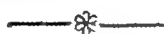
“दिन आँभ्यो थाका बलढ पियो न क्यारो एक ।

पानी वच मे फटियो हिया फूट भटदे ग ”॥

पानी बात व्हे' जाय है । अणी सुरता ने ही माख्य प्रकृति वा प्रधान भी के' है ज्युँ राजा रे प्रधान व्हे' सो राजा री नजर नीचे काम करे है नू ही या सुरता भी चैतन्य राजा री नजर आगे काम करे है । अणी रा तीन गुण है—मतांगुण (बुद्धि, ज्ञान), रजोगुण (मन) ने तमोगुण । यो मन श् रीये सो जड धम । “ज्ञान, अज्ञान, करणो, यणी रे गुण तीन ही ।” अणी रा स्वभाव है के जतरे आत्मज्ञान नी रे' तारे नी रुकणो । अर्थात् सुरता आत्म ज्ञान बिना नी रुके है, या याद याद राखणी ने ई रे रुकणो ही योग है । सुरता मे तमोगुण है जणी श या हमरा दो ही (तम ने रजोगुण) ने

के'हैं अर्थान सुरता रो चेतन री कानी व्हे'णो योग है । कोई चित्तवृत्ति से शून्य व्हे'णो याग नी मान ले ई शूँ के' है के—

४—चित्त, बुद्धि रो नाम है, ने वणी रा निश्चय रा भेदाँ ने चित्तवृत्ति के' है । वी मुख्य पांच है, ने वणा रा आठ ने आठ रा साठ ने नाठ मे विपर्यय रा बासठ भेद ब्हिया । ने वणा रा अनन्त भेद हीज यो 'बन्ध बाजे है । शूँ ही अविपर्यय रो भी बासठ भेद, वणी विपर्यय शूँ उलटा ब्हिया । वणी मे तम (गुण) रा अविपर्यय रो व्हे' जाणो ही निर्वीज योग अमप्रज्ञात समाधि बाजे है । बाकी रा च्यारों रो अविपर्यय व्हे'णो सर्वाज सप्रज्ञात योग बाजे हे । मतलब—अविपर्यय ही योग है, ने विपर्यय ही अयोग है । ई ने ही ज्ञान, अज्ञान, विद्या, अविद्या आदि नामों शूँ ओळखे है । या बात आगे फेर स्पष्ट आवेगा ।



सू०—तदा दृष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥३॥

१—जदी देखवावाळो आपणा स्वरूप मे ठे'र जावे है ।

२—मन री तरंगा ठे'र जावे, जदी यो देखवावाळो अणा भौ न्यारो व्हे' ड्यूँ व्हे' जाय है । (ई ने ही स्वरूपावस्थान आपणा रूप मे ठे'र जाणो के' है, ने यो ही महासुख है) ।

५—प्र० चित्त वी वृत्तियों के निरोध होने पर क्यों अखण्ड सुख मिलता है ?

शास्त्र रो सार प्रथम पाद है, ने प्रथम पाद रो भी सार च्यार सूत्र है, च्यार सूत्र रो भी सार तीसरो सूत्र है, ने तीसरा सूत्र रो सार दो अक्षर है, ने दो अक्षर रो सार एक अक्षर है ।

४-अमल में निअय मात्र रो माक्षीपणो ही पुरुष मे दृष्टापणो है । यो दृष्टापणो ही अणो रो आपरूप है । अणी सिवाय रा सब ही रूप वृत्तिया रा है । दृष्टापणो तो सदा एक रम अविनाशी है हीज, ने निश्चयपणो भी है, तो अविनाशी, पण गुणा रा स्वभाव शू वणी रा मुख्य तीन हीज भेद व्हे' है-वणी में पुरो सात्विकपणो, रजमिश्रितसात्विकपणो, ने तममिश्रितसात्विकपणो ई तीन ही गुणाँ रा तीन भेद व्हे' है । क्यूँके निखाळश तो गुण एकलो रे'वे ही नी है, पण ओछा वत्ता माप शू निखाळश वामिश्रित किया है । पुरो सात्विकपणो ही योग कियो है । वणी वगत जाणे दृष्टा स्वरूप में ठे रयो व्हे' ज्यूँ दीख जाय है । यो ही प्रकृति रो दीख जाणो है, ने निर्वीज समाधि है । दूज्यूँ वास्तव में तो पररूप मे अवस्थान व्हे' ही नी शके है, ने बुद्धि रो दीखजाणो स्वविकल्प, ने तन्मात्रा रो दीखणो विकल्प है । पण एक दाण भी ऊँचो दर्जो आर्या बडे नीचो दीखणो पतन नी व्हे' है ।

नोट—इंगने घाले को अपना ज्ञान रो जाना ही योग है । योग, निरोध, स्वरूपावस्थान, समाधि ये एक ही अर्थ के सूचक है ।

ऋतभरा कशी ऊँची हालत व्हे'ती व्हे'गा, वठे कई सुख व्हे'गा,
 देखाँ भागवतजी मे वठा रो हाल व्हे'गा, वा वेद पुराण कणी
 पोथी मे नी तो कणी महात्मा ने पूछा, जी अणी वात ने जाणता
 व्हे', वणाँ शू वाक्य व्हे'जावा । सूत्रकार आज्ञा करे के यूँ नी' ।
 चावे जतरो शुणलो, ने अदाज बाँधलो, पण या तो न्योरी'ज है,
 ने मज शू अधिक है, ने अनोखी है । अणी शू ई ने प्रत्यक्ष करो
 चढी ज जाण शकोगा । विना अनुभव तो ससारी वात रो भी
 पदाज नी बवे, जदी सब शू अधिक, ने अनोखी यूँ कूँकर जणाय
 शके । जो थे म्हारा के'वा माफिक आय रिया हो तो समझ रिया
 हो, ने नी तो भूल्या जठा शू ही गणो, कई अटकाव है, शूधी वात,
 ने महात्मा है । कोडो कोडी रे वास्ते विचार करो तो थोडो
 मोडो अणी रो भी विचार करो, आप शू आप बधता जाओगा ।
 विचार रो तरज तो म्हे वताय रिया हा । अवे थाणे ही हावे है ।
 पाणा ही पर रो वस्तु थे ही भूलो, ने वतावा पे भी नी हेरो,
 रोवा रे यणी ने भी लुकावो तो थाँणी मुरजो, म्हँतो बराबर
 अगट प्रकाश ले'ने कहा हूँ, मन व्हे' जदी ही हेर लो, जाणे यूँ
 भगवान मन्त्राग आला कर रिया है ।

२—नयूके दमरा रा अठोटा, गुणी वाताँ, अणी माची
 प्रायत सक र नय पण हा नी शक । पे'ली तो मनय र विचारवा
 रो नीत होत भूल शू शुस्वान व्हे'है, ने व ती मे फेर एक पे एक
 बधता नय है । अवे अ गरा मे योग्यो अमम्भव व्हे' ज्यू अणी
 ऋतभरा प्रकाश विना अनागो हीन है, ने “अथेनेव नीयमाना

(३२) मुण्डक्यनिरयन वद्विप्राय मतीन्द्रियम् ।

त्वेति श्रुत्वा न चैवाय नितश्चरति तद्वत् ॥

फेलाव अणा न्यारसूत्रों रो हीज फेलाव है, ने मुख्य योग रो लक्षण तो दूसरा सूत्र म आय गयो है, सो ध्यान मे रे'णो चावे।

५-यूँ जतरं पूरी सात्त्विकता अर्थान् अविश्य योग नी व्हे' वतरे जाणे निश्चय रा भेदों मरीखो व्हे'। दूज्यूँ दृष्टा व्हे' जाय है। यो ही अयोग चाजे है, ने अणा निश्चय रा भेद रो नाम हा वृत्ति यों है। निश्चय रा नाम चित्त (बुद्धि) है। यद्यपि प्रकृति ने बुद्धि भी निश्चय रा भेद ज्यूँ जणाय है, पण प्रकृति तो निश्चय रो कारण, ने बुद्धि भेदों रो कारण है। जदी वृत्तिसाम्य ही योग नी है, तो वृत्ति वैसाय ही योग न्हियो, यो ही निरोध चाजे है। वृत्ति साम्य, ने वैसाय दोई वृत्तियाँ होज है। याँ रो हीज नाम अविद्या ने विद्या है। या योग चतुसूत्री है। अणी मे सम्पूर्ण मार आय गियो। अवे दूजों सब अणी'ज रो फेलाव है। योग तो सहज ही है। अवे वणावट (वृत्तियाँ) रो विचार कीधो जाय है। क्यूँ के अणा रो जाणणों ही योग है।

नोट—बुल वृत्तियों मे अलग ही वृत्तियों का दृष्टा है यही योग और किसी वृत्ति मे मिला (वृत्तिरप) दा है, यही अयोगवृत्ति वा आकार है।

“जगी लाभ वचे वत्तो, और लाभ गणे नही ।
जणी ने पाय ने म्होटा, दुख शूँ भी डगे नहीं ॥”

श्रीगीतार्ज

री हालत व्हे'गई है । कई सूर्यनारायण ने यो विचार व्हे'के यानी
व्हे'जो अंधारा मे ठाकर खाय जाऊ, । अणी पे एक बात है, वे
एक परणी छोरी वगी री शानी री कुआरीछोरियाँ शूँ वणी र
अनुभव री बातों कर री'ही । विचारया वी भी आपणी बुदि
साफिक वणों वानों ने समझवा री कोशीश कर री' ही । वण
के तो या भी के' दी-नी के, म्हारे एक छोग भी व्हे'गयो हो, प
यो प्यारी गन रो बियो, वणी वगत म्हारी नणद जागती है
मृ तो गी ही मो छोगे कुँकर व्हे' है, यो तो नणद ने पूछ्य
जे गदर पडेगा । जदी एक अनुभवी लुगाई बोली के बेटी औ
ता मा ठीक है, पण नींद मे छोगा नी जणाय है, ने प्रछ्या
ना, पण तणे जी ने हीज गवर पडे है, दूजा ने नी, गुँही जा
मा ही जाणे है, के बटा शूँ उतगय है, के नी', ने वा क
मानव है—

गणे मा ही जाण मी, या अण जाणी जाण ।
नानर अंधारी नाग मी, उया अलग पिछाण ॥

अलगपञ्ची

४—वर्णा पाच ही वृद्धि रा भेदां (चित्तवृत्तियां) रा ई नाम है, ने नाम शूँ ही ई ओळखाय शके है। अणां में पेलो भेद (प्रमाण) ने दूमरो (विपर्यय) ही मुख्य है। अणां रो ही नाम विद्या ने अविद्या है। बाकी रा तीन तो अणा रे साथे आळा बुरा व्हे'जाय है। पण प्रमाण भी जणी में नी जाय शके, जठे विपर्यय रो तो पत्तो ही कठे लागे, जदी विपर्यय रा कीधा थका प्रपञ्च रो वठे गुजारे ही कूँकर व्हे' शके। पण प्रमाण भी ज्यूँ वणी शूँ है, यूँ ही विपर्यय भी वणी शूँ ही है। नी सुवावे तो पामणां ने पामणां नी सुवावे, पण घर-धणी ने तो सब ही मुहावे।

सू०--प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥७॥

१—प्रत्यक्ष (चौडे) अठोटो (अंदाज) ने शास्त्र प्रमाण है।

२—आगे दिग्गणो, अंदाज शूँ दिखणो ने साचा रे के' वा शूँ दिग्गणो, ई ने ठीक दीखणो के'वे है। ई प्रत्यक्ष अनुमान ने आगम वाजे है। ई प्रमाण रा हीज भेद है।

३—वर्णा पाच वृत्तिया मे प्रमाण नाम रो वृत्ति रा तीन भेद हैं। एक तो दिखे मो प्रत्यक्ष वाजे है। ज्यूँ घान शूँ गुणवो दिखे है, ने जीभ शूँ स्वाद दिखे है। यूँ ही आख शूँ, रंग, चामडी शूँ

(५) प्र०—प्रथम पद कहिये कि प्रमाण वृत्ति किसे कहते हैं ?

उ०—प्रमाण पदार्थ को कहते हैं, उसके तीन भेद हैं—प्रत्यक्ष (इन्द्रियों से जना जाय सो) अनुमान (अंदाज) और

सू०—जातिदेशकाल समयानवच्छिन्नासार्व- भौमामहाव्रतम् ॥३१॥

२—जातरा, जगा'रा, वगतरा, ने नियम रा विचार शू भी ई काम नी करणा, पण बिलकुल अणों ने छोड़ देणा ही म्होटी तपस्या है, अणी ने ही महाव्रत भी के'है ।

(५) प्र०—हे भगवन् । ये पाचों यम जो आपने कहे, वे तो मनुष्य मात्र को ही साधने चाहिये और किसी-न-किसी अश मे सब साधते ही हैं फिर इनमे क्या विशेषता होने से ये विवेक ख्याति (विवेक ज्ञान) के शीघ्र उपयोगी होते हैं ?

उ०—इनमे जाति (जैसे गाय वा मनुष्य) देश (जैसे तीर्थ वा मन्दिर) काल (जैसे रविवार वा एकादशी), समय (जैसे भागते हुए वा विश्वास देकर) की कैद (विचार) न रखकर पालने से ही ये महाव्रत कहाते हैं और इनकी कैद मे आये हुए ही ये अणुव्रत के नाम से कहे जाते हैं अर्थात् किसी के भी लिये कहीं भी, कभी भी, किसी तरह भी इन यमों का कुछ भी नहीं बिगडने देने से ये महाव्रत कहाते हैं और ये महाव्रत ही विवेक ख्याति के शीघ्र उपयोगी होते हैं ।

सू०-विपर्यय यो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठितम् ॥८॥

१—विपर्यय, मिथ्या ज्ञान । जो सही बात ने नी बतावे ।

२—व्हे' तो और, ने दिखे और, ई ने ऊँधो दिखणो के' है ।
अणी गो हीज नाम विपर्यय है ।

३—ने ज्यावृत्ति प्रमाण शूँ उलटी-व्हे' तो कई, ने जाणे कई, वी ने विपर्यय के' है । ज्यूँ आछी ने, खोटी समझणी अर्थात् ऊँधी, सो कणी वगत सुरता व्हे' तो और, ने विचारे और है । सीपडी मे चाँदी रो दिखणो, ने शीदरी ने साँप जाणणो आदि ।

४—है, जणी बात ने तो नी बतावे, ने वणी शूँ अवळी (ऊँधी)-नी है ज्यो बतावे, अणी बुद्धि रा भेद रो नाम विपर्यय कियो है । अणी विपर्यय शूँ मिली थकी जतरी वृत्तियाँ है, सब लेश-दुखवाळी है । क्यूँके विपर्यय ही दु.ख है । अणीरा ए ज अविद्यादिक भेद है । विपर्यय ने जाण लेणां ही प्रमाण (अविपर्यय) विद्या है, ने जतरा अणी रा भेद है, वतरा ही ई शूँ ऊँथा रा भेद विद्या । वी हीज अपेक्षा शूँ विद्या रा ने एक ने देखता अविद्या रा भेद व्हे'ता जाय । यूँ शुल पाँच भेदाँ रा दो हीज मुख्य भेद है । जी ७-८ वां सूत्र मे बताय दांथा है ।

(५) प्र०—अद विपर्यय वृत्ति विसे बहनी चाहिये सो बहिये ?

उ० - प्रमाण से विपरीत को विपर्यय कहते हैं । जैसे-अन्य वस्तु को अन्य वस्तु समझना अर्थात् रो तो कुछ और ही और समझना कुछ और ही । जैसे-रस्ती को साँप समझना, सोने को गहना समझना आदि ।

४—प्रमाण (सत्य), बिना विपर्यय कणी रो व्हे' अणी वास्ते विपर्यय भी साँच रे आश रे हीज है, पण है ऊँधो । ज्यू-दीवारे नीचे।रो अंधारो दीवारे आशारे (वणी रे उजाळा रे आशारे) रे'ने भी अधरो । यू ही' विपर्यय मे, ने प्रमाण मे भेद है, ने एक शूँ एक विलकुल विरुद्ध है । जदी विपर्यय तो छोडे ने प्रमाण मे (विद्या में) मनग्व कूकर आय शके । व्यूके विशा वाळा रे तो शास्त्र री (योग री) आवश्यकता ही कई । वी तो योग पाया थका ही है । ने विपर्यय वाळा ई शूँ विरुद्ध व्हेवा शूँ कूकर पाय शके । जणी पे के' के एक विकल्प, (भेद) छुट्टि रो फेर है । जणी शूँ अठी रा वठी मनग्व अज्ञान मे शूँ ज्ञान मे आय शके है । यो मनखाँ मे भी समझणा व्हे' जी हीज जाण गके है । यो शब्द रे साथे साथे एक तरे' रो आकार बंधे पण वास्तव मे वणी रो अर्थ नी व्हे' है । अणी रो जाणणो ही' निर्विकल्प समाधिज्ञान है । ज्यूँ रेल रे वञ्चे आँकडो व्हे' जणी शूँ जुड भी जाय, ने खुल भी जाय, यूँ ही विकल्प है । ज्यूँ टूट-गो रो बीद ने नट, अमली भाव बताय ने आप नारी, ने नर नी रे' जाय । यूँ आत्मा, अनान्मा, शास्त्र

१—लडको परणवा जावे, जदी, परणेत रे दिन लडकावाळा रे घरे सब लुगार्यो मिलने घणों में घूँ हीज एक लुगार्ह ने बीद, ने एक ने लाडी घणावे, ने नवाँ घ्याव ग्हियो व्हे' वणीरे घरे गावती घजावती जाय ने तोरण मारे । पटे घटे ही अथवा पाटी आपणे घरे धाय ने दिधि घूँ परणेत-फेरा फेर घा रो दस्कर बरे' । लुगादो मनपदार घे' तो शाणा गीत गावे ने नी तो पटे घणा ने शूँ जेदया गावे । यो बीद-दीनणी रे मगळ रे वास्ते एव टोटको वे'ई । सम्पादक—

री विधि रो शास्त्रानुसार सहन करणो, घमड नी करणो । अर्णा तपाँ रो वर्णन गीताजी मे आवे हीज है, के तीन तरे' रा तप है, ने फेर वगाँ रा तीन प्रकार है, ने 'करणो' शास्त्र के' वे सो, ने 'ॐ तन् सत् यो कखो नाम' ने 'म्हारे ही आशरे कर्म शयला ही करतो थको ।' आज कल तप, दुःख देवा ने हीज समझ लीधो है । स्वाध्याय, माळा रा मण्या गुड़कावणो नाम राख्यो है, के'क एक आध पाठ मूडा शूँ कर लेणो, ने ईश्वर प्रणिधान रो यो भाव समझ लीधो है, के 'राम करे ज्यो व्हे' है', यूँ कर हाथ पे हाथ मेल वेठा रेणो । सूत्रकार रो जो अभिप्राय है, वो गीताजी रा श्लोक शूँ स्पष्ट व्हे' है । श्री भगवान पतजलि हस री नाँई है, जो पक्षियाँ मे भी उत्तम समझ-यो जाय है, ने आकाशगाभी व्हेवा पे भी पृथ्वी पे चालवा लागे, तो भी वर्णा री चाल री प्रशंसा व्हे' । पाणी मे नी भीजे और तरतो भी रुपाळो लागे, ने चमकी लगाय ने मोती निकाळ लावे, ने दूध पाणी ने न्यारा तो एक यो हीज पत्ती कर शके है । यूँ ही साधन योग भी कखो, तो वो भी सर्वाँ रो शिरोमणी'ज है, ने समाधि विभूति कैवल्य री महिमा भी अणी'ज माफिक है, ने जड चेतन रा विवेक में तो एक ही है । पूर्व जन्म रा सुकृताँ शूँ कर्णी'क ने हीज समाधि पाद रो अधिकार मिले है । दूज्यूँ साधन पाद तो

अर्पण करना अर्थात् ईश्वर निमित्त काम रना) को क्रिया योग कहते हैं ।

नोट—सहन करना (तप) और शास्त्र की आज्ञानुसार सहन करना (स्वाध्याय) और उसका भी अभिमान न करना (ईश्वर प्रणिधान

घात विना जणायाँ कूँकर के'वाय शके । नीद में भट भट आय
 आय ने विचार ओळखाय नी, जणी शूँ यू जगाय । यू ही
 मूर्च्छा मे, ने मृत्यु री वगत व्हे' है । सपना मे भी जाग्रत वच्चे
 मन वत्तो चचल रे' है । जदी'ज थोडी देर नरी दिखे । पण
 नींद में तो घणी शूँ भी घणो तेज व्हे' जाय । जदी'ज स्वास
 बध जाय । यूँ तो सब ही निद्रा हीज है । सिवाय निर्विकल्प
 समाधि रे, पण तारतम्य रा भेद है । वास्तव मे शून्य रो भान
 मरणो ही साक्षात्कार है । ब्रह्मलोक तक शूँ पाछा पडे, सो यो
 ही' भाव बठा तक सूक्ष्म आकार में रे' हीज जाय । अणी शूँ
 जाग्यो ही' बुद्ध कई-प्रबुद्ध है ।

—ॐॐॐ—

सू०—अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः ॥११॥

१—देखा री याद ने स्मृति के' है ।

२—जाण्या थका ने पाछो याद करगो याद रो दिखगो है
 (अणी ने ही स्मृति के' है) ।

३—या स्मृति हीज सविकल्प समाधि मे रे' है । जो शूँ वा
 सविकल्प बाजे । अस्मिता तक स्मृति रे' जाय है । ई रे पी नी'
 रे' वा पे निर्विकल्प समाधि व्हेवे है, ने पाछी व्यवहार री वगत
 मे निर्विकल्प रो स्मृति अथवा सविकल्प री स्मृति रे'वे ही है ।

(५) प्र०—अब पौचदी धृति जो आपने स्मृति बही थी, उसकी पहिचान
 बी नी कृपा कर आज्ञा करिये ।

४०—अनुभव बी हुई वस्तु को याद करना ही स्मृति है ।

और ये दीखने वाले रग शब्द आदि एक ही वस्तु की केवल हालत तबदील हो रही है कि जो ऊँचा योग का अधिकारी नहीं होने से उस दीखने वाले शक्ति के उलट फेर को ही बड़ी बात मानता है। उसको योग में विश्वास, बिना प्रत्यक्ष के नहीं हो सकता और बिना विश्वास आगे बढ़ नहीं सकता। इस लिये ऐसे अधिकारी के लिये मैं अब प्रश्न करना हूँ कि आपने जो आज्ञा की थी कि धारणादि तीनों मयम की सिद्धि हो जाने से सज्ञा अनुभव (विवेक ग्याति) मिलता है और उस संयम को सीढ़ी दर सीढ़ी बढ़ाना चाहिये और सब से मयम की उची सीढ़ी विवेक ग्याति नाम का सज्ञा अनुभव है। परन्तु किसी की यह इच्छा हो कि जो बात होने वाली है प्रथम हो गई, उसे जानूँ तो उसे क्या करना चाहिये अर्थात् मद अधिकारी इन्हीं तबदील होने वाली बातों की इच्छा किया करते हैं। ऐसा मनुष्य अष्टाङ्ग योग साधन कर अगर यह इच्छा करे कि मुझे होने वाली बात और हाँगई उसकी मालूम हो जाय तो याग में उसकी यह इच्छा कैसे पूरी हो सकती है ?

२.—इस मन्त्र । प्रत्यक्ष वस्तु की तीन तरह की तबदीली होती है। पहली हालत को पहली तबदीली और पहली हालत को बदल कर दूसरी में आना उसे ही ही भव परिणाम भी कहते हैं। फिर उस दूसरी हालत में कुछ करने की भी प्रतीति होना लायक परिणाम होता है। फिर तीसरी हालत में आना

नी समझणो (अर्णी ने ही वितर्कानुगत, विचारानुगत आनन्दानुगत, ने अस्मितानुगत, सप्रज्ञात समाधि भो के' है) ।

३—पे'ली तर्क व्हेवे, पण वो भी ससार री कानी रो नी, पण आत्मभान मिल्यो थको रं है, ने वो तर्क भीणो पडवा शूँ विचार वाजे है । ई में फेर आत्मा रो खुलामो वत्तो व्हेवे है—या भी सही व्हेवा शूँ आनन्द वाजे है, ने अर्णो शूँ भी बारीक व्हेवा शूँ अहता, अस्मितामात्र रे' जाय है । इ चार तरे'री समाधि वाजे है । अर्णा चार ही हालताँ ने सविकल्प वा सप्रज्ञात समाधि भी के' है । क्यूँ के वृत्ति—सुरता ब्रह्म री कानी उलटी तो खरी, पण पड दो र'गयो । ज्यूँ-ब्रह्म रे वास्ते तर्क करवा लागा । देखे सो ब्रह्म ही है । क्यूँ के, देखवा रो काम तो और रो नी 'व्हे' शके । अर्णी ने वितर्कवाळी समाधि वा योग के' है । पण या हीज वात बारीक व्हे', ने अतम मे आवे जदी विचार युक्त योग के', ने जदी सुरता वत्ती देर ब्रह्म री कानी रे' ने विचार री कानी आवा में देर परवालागे, जदी आनन्द वाळी समाधि वाजे है । फेर आनन्द भी अर्णी री कानी रे' रे' ने आनन्द रो भान व्हे'तो जाय वा अहता (अस्मिता)—वाळी समाधि वाजे है । ज्यू कणी सुख री घात गुण ने बह्नी के 'गहनं यो मुख मिल गयो, ई मे फर्क तो नी है ?' ये' विचार व्हे'णो पे'ली वितर्क री समाधि वाजे है । नी,

अस्मिता (आभायना) के सहित आत्माकार वृत्ति हो, तब उसे संप्रज्ञात निरोध (समाधि) कहते हैं । इसमें उत्तरोत्तर ध्येय है । यहाँ तक अपूर्ण

दीखणो ही देखवा रा वणी रा भ्रम ने मिटावतो जाय है, ने पड़े वणी रो देखवो भी दीखवा मे आवा लाग जाय है, ने यूँ क्रम क्रम शूँ वधवा रा ही नाम सवितर्का, निर्वितर्का, सविचारा, निर्विचारा विह्या है। समापत्ति मे आ विशेषता है, के वा भले ही सर्वाज ही व्हे', पण अणाँ मे शूँ नीचे नी उतराय है, यो ही इङ्गरप्रणिधान मे, ने दूसरा अभ्यासादि रा साधन मे भेद है। अन्य अभ्यास वैराग्य शूँ कठिनता शूँ ज्या सप्रज्ञात व्हे' जणी मे वओ ही पडवा रो (रुकवा रो) भव प्रत्यय रे' जाय है। पण आ वात अणाँ समापत्तियाँ मे नी है—जी के एकतत्वाभ्यास शूँ न्हे' है ज्यूँ—

‘ निराकार भजे वीं ने, पडे मे'नत मोकली ।
 म्हागे मे मन डेवाँ री, सर्वाँ री गुण अर्जुण ॥
 मूँ हम् जन्म ने मोत, देग्दार करुं नहीं ।”

अणी मे अणाँ दो हीज समाधियाँ रा भेद बताया है। अणाँ ने सर्वाज्ञा (बीजवाणी) यूँ की' के निर्वीज है, यो भी भान व्हे' गो र्वात हीज है। क्यूँके अणी मे भी शब्द अर्थ, ज्ञान, गुप्त रूप शूँ हीज है।

५—वी हीज विषय मूदम व्हां'वा स्थूल, पण विष या करावे

स्थि निर्वीज समाधि ही सय से ध्रष्ट (परम समाधि) सम-
 रुता चाहिये। हम निर्वीज को हो चैतन्य समाधि भी कहते
 है और हम शून्य समाधि को जड समाधि कहते हैं। क्योंकि
 इनमें उटना का (दृश्य का) बीज रह जाता है, समय पाकर
 उसके फिर उठ आने का संदेश रह जाता है।

६—इसी को पान्ते भवप्रत्यय के नाम से कहा या

सू०—विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कार-

शेषोऽन्यः ॥१८॥

१—अर्णां शू आगे ज्या समाधि परम वैराग्य शू धिरता रा न्यभाय बाळी व्हे'है, जो में केवल संस्कार हीज रे'जाय, वा असप्रज्ञात बाजे है ।

२—शू देखे जणी मे मन लाग ने ऊपरली च्यार ही वार्ता न्यारी व्हे'जाय, यो ही अखड महा मुख है (अणी ने हीज संस्कारणेष वा असप्रज्ञात समाधि भी के' है) ।

३—या समाधि पर वैरागवाळा रे व्हे'है । ई ने ही असप्रज्ञात के'वे है । ज्या आत्मा मे अधिकाधिक ठे'र जाय, ज्यूँ स्त्री ने पति पे प्रेम व्हे'जाय, जणी शू पी'र (पीहर) मुहावे ही नी । केवल पी र है, अतरोक कठी ने ही संस्कार एी रे'जाय है । अर्णां में भी आत्मादार वृत्ति अशी व्हे'के वारणे आवणो पसद ही नी फर मिरफ प्रारब्ध रे'वा शू वी मे संसार रो व्यवहार व्हे'है । अणी'ज समाधि रो छेटी शू वर्णन करवावाळा शून्य के'दे है । परन्तु या शून्य नी, पण अधिक स्पष्ट है । अणी रे मूढा आगे अवार जणी ने स्पष्ट गणां हां, सो एी संसार शून्य सरीखो लागे है, विराम प्रत्यय के'वे है, ठेरवा रो निश्चय अणी अभ्यास शू अर्थान आत्मा

प्र०—ऐ नगवन् । तो अभ्यास वैराग्य को पूर्ण हुआ कब समझना चाहिये ?

उ०—आत्मादार वृत्ति होने से आत्मादारता का ही वृत्ति को अभ्यास हो जाता है इसी एण के अनुभव एत वृत्ति का रह जाना हो

सू०—ध्यायानहेयास्तद्वृत्तयः ॥११॥

२—पेली जोरावर दुःखाँ ने महासुख रा काम (क्रियायोग) शूँ नवळा करडेणा चावे ।

४—अणाँ री वृत्तियाँ ने ध्यान कर, ने मिटावणी चावे । ध्यान शूँ विचार, विद्या सहित एकाग्रता शूँ है । अजी'ज ने प्रसख्यान भी के' है । जदी यूँ ध्यान शूँ ही वृत्तियाँ नवली पडजाय, जदी प्रति प्रसव शूँ समेटवा शूँ बीजभाव नष्ट व्हे'ने अविद्या नष्ट व्हे'जाय । वृत्तियाँ ने ध्यान शूँ कमजोर कर देणो तो सूधो है, पण कमजोर कर बिलकुल से'ल मिटाय देणो, (बीज मिटाय देणो) अविद्या गो संस्कार हीज नष्ट कर देणो मुशकिल है, ने यो नो ळ्हियो जतरे पाछो सब अनर्थ व्हेवा गो, कदी-न-कदी ।

(१) प्र०— हे भगवन् जत्र निर्वीज समाधि से ही इन क्लेशों का बिलकुल नाश होता है, तो फिर निर्वीज समाधि का ही अनुष्ठान करना चाहिये । इस क्रियायोग की फिर क्या आवश्यकता है ?

उ०— हे सौम्य ! इनकी स्मृलता ध्यान से मिटानी चाहिये अर्थात् क्रियायोग में । क्लेशों को कमजोर कर ध्यान में सूक्ष्म कर फिर समाधि द्वारा निर्वीज कर देना चाहिये । हे सौम्य ! क्रियायोग विना समाधि की योग्यता चित्त में नहीं आती । इसलिये क्रिया योग में ही क्लेशों को कमजोर कर फिर क्रम से निर्वीज समाधि में बिलकुल नाश कर देना उचित है ।

सू०—भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥१६॥

१—जी प्रकृति में लय ब्रह्मा है, वा विदेहलय ब्रह्मा है, वर्णा में जन्म रो बीज है ॥

२—यूँ ही, जी भे'म ने विचार रे, वा आनंद ने म्हू'पणा रे साथे हीज ठे'र जाय, वर्णा ने पाछो जन्म लेगो पडे है (ई विदेह, ने प्रकृति लय बाजे है, अर्णा री या 'गोडी'क ठे'ग्वा री कशर भव प्रत्यय भी बाजे है)

३—पलो जां अमप्रज्ञात समाधि रो वर्णन आयो, वर्णा शू'कतराक ने अर्यो अंदाज बवे है, के वर्णा मे शरीर री ओशान नी रे'वा शू' अथवा कोई अठा री नाई म्हो'टो सुख मिलवा शू', ने वर्णा मे मन लाग जावा शू' अठीरी (बागली) ओशान नी रे' नी ब'गा जी शू', वर्णा ने अमप्रज्ञात (अठा री ओशान बना री) समाधि वे ता ब'गा । वर्णा पे अर्णा उगर्णाणि माँ सूत्र शू'यूँ रे तावे के यूँ ओशान नी रेणां अमप्रज्ञात समाधि नी बाजे है । वयूँके अर्णा मे तो पारोकी शू' बीज मे सुख री नाई, समार री उत्पत्ति द्विपी थकी रे ' है, जो चौमाया रा चाग ज्युँ पाछा जन्म मरण रा भूँगा फूट जाय है । अर्णा वास्ते कर्णा भी विषय मे मन लाग जागो ओ'पान विना री (अमप्रज्ञाय) समाधि ना बाजे है । वयूँके वर्णा मे द्विपी रका समार री ओशान है । एत आत्मा र मरीयो वृत्ति बं'जाणां ही अमप्रज्ञात समाधि है,

प्र०—जब एत अमप्रज्ञात (पूर्ण योग) को न पावर कोई सप्रज्ञात (उदये) तब ही आकर टहर जाता है न। उसकी कश दगा

नोट—“अपाने जुव्हति प्राण प्राणेऽपान तथाऽपरे
प्राणाऽपानगती रुद्धा प्राणायाम परायणा ॥”

श्रीगीता जी

सू०-बाह्याऽऽभ्यन्तरविषयाऽऽक्षेपी चतुर्थः॥५१॥

२—अणों तीन ही बातों ने छोड़ने केवल ठे'रणो हीज श्याम
रां सर शं वत्तो सुधारां हे । अणी ने हीज चौथे सुधार भी क'
हैं । उं ने हीज केवल कुंभक भी के'वे है ।

(१) प्र० हे भगवन ! आप ने तीन प्रकार प्राण के रुकने क
उपाय कहे । इन सब से अधिक प्राणायाम कौनसा है
कि जिस के प्राप्त हुए बाद प्राणायाम करने की
आवश्यकता ही न रहे ।

३० जो बिना ही पलट छोड़ के स्वत ही प्राण ठहर जाय
तब समझ लना चाहिये कि अब प्राणायाम सिद्ध हो
गया । यही चतुर्थ प्राणायाम है । इसे ही केवल कुंभक
कहते हैं ।

नोट—“प्राणाऽपानो समौ कृत्वा, नामाभ्यन्तर चारिणौ”

(गीताजी)

“अटि श्वरा यस्य विनैव लव्य,

यायु श्वरा यस्य विनायरोचस ।

यत्न श्वरा यस्य विनवतम्यम ,

स एव योनी स गुरु स पृथ्वी ॥

वैराग वाळा ने व्हे' है, पण वो वैराग वशीकार सायलो ह
 "वैराग्यात् प्रकृतिलयः, संसारो भवति राजसात् रागात्"
 ई दोई है । अणी मे कनराक अणी कारिका रो अर्थ भी करे है ।
 सासिद्धिक (?) भव-प्रत्यय वाळा ज्ञानादि स्वाभाविक हो व्हे', वी
 प्रकृति रा उपाय प्रत्यय वान योगी । शून्यता ग भान रो नास
 ही ज चीज है । यो पूर्ण ब्रह्म ख्याति विना किस्ने ? या भाव है ।

सू०—श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषास् ॥२०॥

१—दूजाँ रे विश्वास, ने वो शै कोशिश, ने ई शू याद ने
 याद शै समाधि (मविकल्प), ने ई शै मत्त दृष्टि व्हे'ने
 निर्विकल्प समाधि व्हे' है ।

२—विश्वास, उमग, याद, ने ज्ञान री समझ शै मत्त गुग
 पावणी आवे है ।

३—जणी रे जन्म रो बीज नी रे' अर्थात् उगणीश मा मृत्र
 मे कही, वणी समाधि वाळा शै दूजा रे अर्थात् दृष्टा मे तदाकार-
 वृत्ति-वाळा रे अस्मप्रज्ञानसमाधि कृदर व्हे'है ? वणी प व'है, के
 वणी रे विश्वास अर्थात् 'दृष्टा है तीज,' यो विश्वास, ने ई विश्वास

(५) प्र० दीच मे अटव जाने घाले योगियों का आपने पिछ जन्म
 रोना वता, तो विस उपाय से योगी दीच ने न अटकर
 अस्मप्रज्ञान समाधि पा लेता है ।

नी समझणो (अणी ने ही वितर्कानुगत, विचारानुगत आनंदानुगत, ने अस्मितानुगत, सप्रज्ञात समाधि भी के' है) ।

३—पे'ली तर्क व्हेवे, पण वो भी ससार री कानी रो नी, पण आत्मभान मिल्यो थको रे' है, ने वो तर्क भीणो पड़वा शू विचार वाजे है । ई में फेर आत्मा रो खुलासो वत्तो व्हेवे है—या भी सही व्हेवा शू आनन्द वाजे है, ने अणी शू भी वारीक व्हेवा शू अहता, अस्मितामात्र रे' जाय है । इ चार तरे'री समाधि वाजे है । अणी चार ही हालतां ने अविकल्प वा सप्रज्ञात समाधि भी के' है । क्यूँ के वृत्ति—मुरता ब्रह्म री कानी उलटी तो खरी, पण पड़ दो रे'गयो । ज्यूँ—ब्रह्म रे वास्ते तर्क करवा लागा । देखे सो ब्रह्म ही है । क्यूँ के, देखवा रो काम तो और रो नी व्हे' शके । अणी ने वितर्कवाळी समाधि वा योग के' है । पण या हीज बात वारीक व्हे', ने अतस मे आवे जदी विचार युक्त योग के', ने जदी मुरता वत्ती देर ब्रह्म री कानी रे' ने विचार री कानी आवा में देर करवालागे, जदी आनंद वाळी समाधि वाजे है । फेर आनंद भी घणी री कानी रे' रे' ने आनंद रो भान व्हे'तो जाय वा अहता (अस्मिता)—वाळी समाधि वाजे है । ज्यूँ घणी मुख री पात शुण ने कही के 'गहने यो मुख मिल गयो. ई मे फर्क तो नी है ?' ये विचार व्हे'णो, पे'ली वितर्क री समाधि वाजे है । नी,

अस्मिता (अहभावना) के सहित आत्मावार धृति हो, तब उसे सप्रज्ञात निरोध (समाधि) कहते हैं । इसमें उत्तरोत्तर ध्येय है । यहां तक अपूर्ण

सू०—विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कार--

शेषोऽन्त्यः ॥१८॥

१—अर्णी शूँ आगे ज्या समाधि परम वैराग्य शूँ थिरता रा स्वभाव बाळो व्हे'है, जी में केवल संस्कार हीज रे'जाय, वा असप्रज्ञात बाजे है ।

२—यू देखे जणी मे मन लाग ने ऊपरली च्यार ही वार्ता न्यारी व्हे'जाय, यो ही अखड महा मुख है (अर्णी ने हीज संस्कारशेष वा असप्रज्ञात समाधि भी के' है) ।

३—या समाधि पर वैरागवाळा रे व्हे'है । ई ने ही असप्रज्ञात के'वे है । ज्या आत्मा मे अधिकाधिक ठे'र जाय, ज्यूँ स्त्री ने पति पे प्रेम व्हे'जाय, जणी शूँ पी'र (पीहर) मुहावे ही नी । केवल पी'र है, अतरोक कठी ने ही संस्कार ही रे'जाय है । अर्णी मे भी आत्माकार वृत्ति अशी व्हे'के वारणे आवणो पसद ही नी करे सिरफ प्रारब्ध रे'वा शूँ बी मे संसार रो व्यवहार व्हे'है । अर्णी'ज समाधि रो छेटी शूँ वर्णन करवावाळा शून्य के'दे है । परन्तु या शून्य नी, पण अधिक स्पष्ट है । अर्णी रे मूडा आगे अचार जणी ने स्पष्ट गणो र्णी, सो ही संसार शून्य मरीखो लागे है, विराम प्रत्यय के'वे है, ठेरवा रो निश्चय अर्णी अभ्यास शूँ अर्थान् आत्मा

प्र०—ऐ भगवन् ! तो अभ्यास वैराग्य को पूर्ण हुआ कब सनसना चाहिये ?

२०—आत्माकार वृत्ति होने से आत्माकारता का ही वृत्ति को अभ्यास हो जाता है उसी दृष्टि से अनुभव युक्त वृत्ति का रह जाना ही

फरक तो नी व्हे'गा, यूँ व्हे' सो विचार वाळी समाधि वाजे है।
अर्णा ने कपिलगीता में भीति, विक्षेपता, गता, याता ने लीनता
की' है। ज्यूँ सासरे जावा में स्त्रियाँ ने ब्हियाँ करे है-पे'ली भय,
पछे जाणो, ने पछे बठे अधिक रे'णो, ने पछे वणी ने हीज घर
ममक ले'णो। अणी रे आगे री हालत रो अर्थात् असप्रज्ञात
निविकल्प रो आगे वर्णन आवे है। वशीकार नाम रा वैराग्य
शूँ ई चार प्रकार री समाधियाँ व्हे' है।

४—यो परम वैराग्य नी व्हे' जतरे, ने वशीकार वैराग्य
व्हे' जतरे सप्रज्ञात नाम री समाधि वाजे है। सप्रज्ञात में भी
जगाय, पण गुण रो दर्शन नी व्हेवा शूँ वितर्क आदि शूँ मिल्यो
थको साक्षात् व्हे'जणी शूँ छूटवो, ने आवो अणी में व्हे'तो रे', जणी
शूँ ई बुद्धि में हीज चार ही भेद रे'है—“यो बुद्धेः परतस्तुसः”
नी जे'। अर्णा में वितर्क में म्होटो, विचार में वारीकी, ने आनंद
में मुग्ध, ने अस्मिता में केवल आपो हीज रे'जाय है। पे'ला में
ऊपरला चार ही रे'। पण ऊपरला में नीचला छूटता जाणा
पारं हीज। यूँ के, प्रकृति रो क्रम ही यो है। यूँ नी व्हे'तो कोई
छूट ही (मोक्ष ही) नी शके, ने छूट्या भी पाछा पड़ जाय। पण
नीच में उंचा है, पण उंचा में नीचो नी है। ज्यूँ पृथ्वी री
आर्यपद्म वागें गेच नी है।

अन्यथा वैराग्य समक्षता चाहिये। उन में थोड़ी बाधवृत्ति का बीज
रहना ही है।

सू०—विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कार-- शेषोऽन्त्यः ॥१८॥

१—अर्णाँ शूँ आगे ज्या समाधि परम वैराग्य शूँ थिरता रा स्वभाव बाळो व्हे'है, जीं में केवल संस्कार हीज रे'जाय, वा असप्रज्ञात बाजे है ।

२—यू देखे जणी में मन लाग ने ऊपरली च्यार ही वार्ता न्यारी व्हे'जाय, यो ही अखड महा सुख है (अणी ने हीज संस्कारशेष वा असप्रज्ञात समाधि भी के' है) ।

३—या समाधि पर वैरागवाळा रे व्हे'है । ई ने ही असप्रज्ञात के वे'है । ज्या आत्मा में अधिकाधिक ठे'र जाय, ज्यूँ स्त्री ने पति पे प्रेम व्हे'जाय, जणी शूँ पी'र (पीढ़र) मुहावे ही नी । केवल पी'र है, अतरोक कठी ने ही संस्कार ही रे'जाय है । अणी मे भी आत्माकार धृति अशी व्हे'के वारणे आवणो पसद ही नी फरे सिरफ प्रारब्ध रे'वा शूँ वीं मे संसार रो व्यवहार व्हे'है । अणी'ज समाधि रो छेटी शूँ वर्णन करवावाळा शून्य के'दे है । परन्तु या शून्य नी पण अधिक स्पष्ट है । अर्णी रे मूढा आगे अवार जणी ने स्पष्ट गणाँ लीं, सो लीं संसार शून्य सरीखो लागे है, विराम प्रत्यय के'वे है, ठेरवा रो निश्चय अणी अभ्यास शूँ अर्थात् आत्मा

प्र०—हे भगवन् ! तो अभ्यास वैराग्य को पूर्ण हुआ कर सनसना चाहिये !

उ०—आत्माकार धृति होने से आत्माकारता का ही धृति को अभ्यास हो जाता है. उसी एका के अनुभव युक्त धृति का रह जाना ही

थिर है, वणी में निश्चय रा अभ्यास शूँ अर्थात् वणी री थिरता देखवाँ शूँ केवल थिरता मात्र अर्थात् आत्मभान री ही जणी में मत्ता है (संस्कार है)। अशी या समाधि असप्रज्ञात वाजे है।

४—न्यार हो तरे'री सप्रज्ञात समाधि की', अणी सिवाय एरु अणी शूँ अनोखी ही समाधि है, वणी ने ई ने देखताँ भले ही के'दी', पण है, तो महामंप्रज्ञात भी वणी में पुरुषाकार वृत्ति जेवा शूँ, ने पुरुष जो प्रकृति शूँ विलक्षण, ने सलक्षण व्हेवा शूँ यणी प्रकृति रा आभड़ शूँ छेटी, ने निरतर नरे रे'वा शूँ वृत्ति एरुदाण भी या हालत पायाँ केदे, वणी मजा ने नी भूलाय शके

‘तस्याहं न प्रणश्यामि सच मे न प्रणश्यति ।

य लब्ध्वा चापरं लाभ मन्यते नाधिकं तत ।

यस्मिन् स्थितो न दुर्गेन गुरुणापि विचाल्यते॥”

अयो सम्भार रे'जाय, वा, तो दशा (हालत) ही न्यारी है। यो ही योग परम है। सप्रज्ञात री ही संप्रज्ञात, ज्ञान री ही ज्ञान तो है, ने अणी रे आगे यो ज्ञान ही अज्ञान है, वा अणी जड ज्ञान री संप्रज्ञात कृत्तर ? ने बुद्धि शूँ परम विराम प्रत्यय है, वणी रा वल भेद है, सो दोग'तो आगे १९ में किया। जी बुद्धि में आवेगा, ने एरु यो, जो बुद्धि शूँ पर है। १८ सो, ने २० सो बुद्धि शूँ पर ए'ना न्नाय प्रत्यय यो वाने है। अणी'ज में शून्य री भान मिते है, अणी री ही नाम विराम प्रत्यय या संस्कार है।

असप्रज्ञात तिरोर कदा जाना ॥ (यणी अभ्यास वैराग्य पूर्ण हो जते है) ।

सू०—भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥१६॥

१—जी प्रकृति में लय ब्हिया है वा विदेहलय ब्हिया है, वणाँ मे जन्म रो बीज है ॥

२—यूँ ही, जी भे'म ने विचार रे, वा आनंद ने मृपणा मे साथ हीज ठेर जाय, वणाँ ने पाछो जन्म लेगो पडे है (ई विदेह, ने प्रकृति लय बाजे है, अणाँ री या थोडी'क ठेरवा री कशर भव प्रत्यय भी बाजे है)

३—पे'लां जां अमप्रज्ञात समाधि रो वर्णन आयो, वर्गी शू कतराक ने अश्यो अंदाज बधे है, के वणी मे शरीर री ओशान नी रे'वा शू अथवा कोई अठा री नाई म्हांटो मुख मिलवा शू ने वणी में मन लाग जावा शू अठरी (चारली) ओशान नी रे' तो जे'गा, जी शू, वर्गी ने अमप्रज्ञात (अठा री ओशान बना री) समाधि के ता जे'गा । जणी पे अणी उगणीश मों मृत्र शू यूँ तावे, के यूँ ओशान नी रे'णां अमप्रज्ञात समाधि नी बाजे है । वयूँके अणी मे तां चारोकी शू धाज मे म्ख री नाई, म्मार री उत्पत्ति छिपी थकी रे ' है, सो चौमात्मा रा चारा ज्यूँ पाछा जन्म मरण रा भूंगा फूट जाय है । अणी वास्ते कणी भी विषय मे मन लाग जागो, ओशान बिना री (अमप्रज्ञाय) समाधि ना बाजे है । वयूँके वर्गी मे छिपी यका ससार री आगान है । एण आत्मा रे सरोखी वृत्ति जे'जाणो ही असप्रज्ञात समाधि है,

प्र०—जब हम असप्रज्ञात (पूर्ण योग) को न पाकर कोई संप्रज्ञात (उदग्र) सब हो आकर टहर जाता है तो उसकी क्या दशा

या याद राखणी चावे । अणी रो ही गीताजी मे धर्णन है, के—

‘अनंत सुख दीखे वो बुद्धि शूँ इन्द्रियाँ विनाँ’

ई रो भाव यो है, के दृष्टा (आत्मा री ओशान) जणी वृत्ति मे नी वणी मे समार रो (जनम मरण रो) बीज अवश्य है, या याद राखणी । पे'ली सप्रज्ञात ने पछे असप्रज्ञात समाधि की' ने वच्चे ठे र जावारी असप्रज्ञात भी चेताय दी दी । आगे या बतावे है, के विश्राम आदि बीश मा सूत्र मे किया, वणाँ विना योग में चालणी ही नी आवे, ने वणाँ में फरक रे' जावा शूँ वच्चे रुकाय जाय, या हीज अठे उगणीश माँ सूत्र मे की' ज्या समाधि है ।

“पादा फेर भरे जन्म पाया जाँ ब्रह्म लोक भी ।

मने पायाँ पड़े पाया कोई जन्मे कदी नहीं ॥”

४—सप्रज्ञात रा मुख्य चार भेद बताया, असप्रज्ञात रा दो भेद है निर्बीज असप्रज्ञात तो परम वैराग्य शू पुरुष रयाति वहेवा प अमी शून्यता रहित साक्षानकार री हालत है । दूसरी सर्बीज असप्रज्ञात है । वर्गी रा भो फेर दो भेद है,—भव-प्रत्यय, ने उपाय-प्रत्यय । न मा'री असप्रज्ञात (निर्बीज) ने तो पुरुष प्रत्यय के' शरणी । अर्गी मे भय समार रा निश्चय वाली विदेह, देवता, न पत्नी मे लोन चिया ब्रह्म रे वहे' है । अर्गी ने ब्रह्मानन्द चारी भजन रे, पण वज आडी भव-प्रत्यय री मार ग जाय, जणी शू वणा ने आवणा पे । पण उपाय साधन री निश्चय रे' जी रे' रे' है । वर्गी मे वर्गन आगला सूत्र मे है । भव-प्रत्यय

होत है ? अन्त मे उन्म मे ही बिना साधन ही योगी दांते हैं
हमक क्या करण है ?

वैराग वाळा ने व्हे' है, पण वो वैराग वशीकार मायलो ह
 "वैराग्यात् प्रकृतिलयः, संसारो भवति राजसात् रागात्"
 ई बोर्ड है। अणी में कतराक अगी कारिका रो अर्थ भी करे है।
 नासिद्धिक (?) भव-प्रत्यय वाळा ज्ञानादि स्वाभाविक ही व्हे', वो
 प्रकृति रा उपाय प्रत्यय वान योगी। शून्यता रा भान रो नाम
 ही ज बीज है। यो पूर्ण ब्रह्म ख्याति विना किस्तरे ? यो भाव है।

सू०—श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥२०॥

१—दृजाँ रे विश्वास, ने बी शूँ कोशिश, ने ई शूँ याद, ने
 याद शूँ समाधि (सविकल्प), ने ई शूँ मत्स्य दृष्टि व्हे'ने
 निर्विकल्प समाधि व्हे' है।

२—विश्वास, उमग, याद, ने ज्ञान री समझ शूँ महा गुण
 पावणी आवे है।

३—जर्गाँ रे जन्म रो बीज नी रे' अर्थात् उगणीग मा मृत्र
 मे फटी, वणी समाधि वाळा शूँ दृजाँ रे अर्थात् दृष्टा मे तदावार-
 षत्ति-वाळा रे असप्रज्ञातसमाधि कृदर व्हे' है ? वणी पे वें है, के
 पणा र विश्वास अर्थात् 'दृष्टा है हीज,' यो विश्वास, ने ई विश्वास

(५) प्र० दीध मे अटक जाने वाले योगियों का आपने फिर जन्म
 होना था, तो किस उपाय से योगी दीध मे न अटककर
 असप्रज्ञात समाधि पा लेता है ?

याद ने शान्ति, अणा शूँ अणी परम वैराग्यवाली समाधि ने पावे है । आर नी पावे जतरे वणारे ई उपाय रो निश्चय माँय ने शूँ उमग अर्थान् तदाकार करवा रो हाश, ने वणी शूँ याद । भाव बो-के 'दृष्टा है,' अणी विश्वास शूँ आपो आप उमग व्हे' है, ने उमग शूँ दृष्टा रे आकार री वृत्ति व्हे' जाय, ने पाछी बारणे आवा पे दृष्टा है' अणी विश्वास शूँ वृत्ति दृष्टा री कानी आवे, ने यूँ आवा शूँ उमग व्हे, जणी शूँ फेर अधिक नजीक अर्थात् दृष्टा रे आकार वृत्ति व्हेवा ने वो शूँ दृष्टा रे आकार व्हेवा री याद (स्मृति) रे'वा लाग जाय, ने या याद ही अधिक रे'णो समानि मिलता है, ने स्थिरता शूँ पछे अशो स्थिरता व्हे'जाय, के दृष्टा ने दोउने वृत्ति और जगा जाय ही नी, या ही' असप्रज्ञात समानि पावे है । अणी असप्रज्ञता मे, ने जन्मदेवा वाली जन्मप्रज्ञा मे नगोई फरक है । या तो दृष्टा रे आकार वृत्ति रे'वा शूँ व्हे' है, ने या दृश्य रे आकार व्हेवा शूँ व्हे' है, ने दृश्य रे आकार वृत्ति रे'वा व्हे'णो एक तरे' री नींद है, ने दृष्टा रे आकार रे'णो एक तरे'री जागणा है, अर्थात् वो मरणो है, ने वो जीवणो है । ऊपरे कही धकी बातों विना योग मे आननी ही नी आवे, ने अणों मे फरक रे'जावा शूँ व्हे ही रह्यार जाय । या जाणे, के 'मूँ यागी', पण वो योग री रोगी

३० प्रथम तो याग मे अन्तर्गत की मुख्य मानी गई है, इससे अन्तर्गत बनता है । उन्माद (वीर्य) से स्मृति (याद) रहने वाली है । याद से शान्ति और मन्य का अनुभव मिलता है । शान्ति अनुभव के लिए अधिक अन्तर्गत (विद्याम), उन्माद

मृ०—तीनसंवेगानामासन्नः ॥२१॥

१—मृग वेगवाळा रे भट ही ।

२—नेत्र चाल वाळा रे महासुख मिलवा मे ढेर नी लागी ।
(ई ने तीन संवेग के है) ।

३—पण पे'ली श्रद्धा, फेर उमंग (उत्साह), फेर स्मृति (याद),
नेत्र शिरगा, ने पदे अडिग थिरता व्हे'है । यू तो अणी अडिगता
ने पाग मे नरी छेटी दीये है । अणी पे भगवान् सूत्रकार आज्ञा
करे है, 'ने गग नेग न्हे' वणी रे तो भट ही या समाधि प्राप्त
न्हे'जाय है । मृ-छांडे गितौड़ शं उदयपुर जाणो चावे, तो वचला
नेता रो हाज शुण ने शू पूछे, के कतरा दिन मे उदयपुर पूग
जाय ? हो नगी ने पादो यू हीन प्रदणो पड़े, के थू कूकर
जायो जाई है ? गाग मे जायगा तो वणी माफिक जायगा यू
शिरगा, मंतर शिमान मे अधिक शं अधिक जल्दी पहुँच शक
है । वरिष्ठ उदयपुर ने गितौड़ रे वगे माठ हीज मील है, पग
वरा रो जरियो जायो तेन न्हे'गा, वरी ही नेत्री शू बी मील
ही ने न्हे'जायगा । यू ही न्हा रे कानी वृत्ति रो वेग जतरा
जाई है ने गग अर्थान् शिमान जतरा नेत्र व्हे'गा, वतरी ही भट
जाई है मनवि श्रद्धा व्हे'जायगा । वरुं के सूत्र मे संवेग पद
नहीं है । वणी रो मन्तव है टीक वेग अर्थान् न्हा रे कानी
न । न्हा न्हा न्हा दुनिया मे वेग व्हे'हीज है ने परमारथ

• प्र.—इस प्रकार आपन हुये गामी को गरम याग (अग्नप्रजात
मन्त्र) प्राप्त करने में शिना समय लगता है । शिने
समय में गरमयोग मिलता है — गरम शक्ति मिलती है ?

आदि तीन भेद है। वणी में ज्ञान तो सू० १६, १८, में कियो, ने
 यही विवेक लय रे १९ मा में ऐश्वर्य कियो। अबे तीन ही पुरुषप्रत्यय
 अवप्रत्यय, ने उपाय-प्रत्यय में मुख्य उपाय-प्रत्यय योगाभ्यास ही
 कियो। ई रो ही विवरण आवे है। जी शू योगी ने उपाय, धर्म,
 योगाभ्यास, ध्यान लगाय ने शब्दा युक्त के'णो, यो भाव साख्य,
 योग गीता, आदि सर्व सम्मत है। सिरफ साख्य, वो उपाय
 सम्मत, लेयो (ज्ञान) ही माने है। योग के'है, तो यो हीज, पण
 ज्यों परिहारी को'वगी भूमि ता शू हीज चाल शके है।

सू० सूत्रमध्याधिमात्रत्वात् ततोपि विशेषः ॥ २२ ॥

कानी मन लागवा शूँ भी मन ठे'र जाय है अर्थात् नींद री अथवा सपना री जठे याद है, वठे मन लागणो भी मन ठे'रवा रो कारण है।

६—जो वैराग मे हीज उलझ ने ठे'राय जाय, तो शून्यता हीज रे'जाय, । जी शूँ वैराग्य शूँ प्रकृतिलय व्हे'तो दोखे, स्वप्न ने निद्रा रा ज्ञान रो अवलवन करे, तो वणी वैराग्य री शून्यता शूँ निकळ, ने ज्ञानावलवी व्हेवाय जाय । अणी तरे' शूँ ई एक कानी शूँ छुडाय, ने दूसरी कानी उलझाय नी दे', अणी री ओशान राख, ने आपाँ ने अनुकूल पडती व्हे' वशी कर्मशुद्धि करणी चावे, जणी शूँ तरे' तरे' रा उपाय भूमिकानुसार विकल्प कीधा है । कोई कणी रे, ने कोई कणी रे उपयोगी दवा (औषध) री नाई ई व्हे'है ।

सू०—यथाऽभिमतध्यानाद्वा ॥३६॥

१—मुरजी माफिक चावे जणीरा ही ध्यान शूँ भी मन ठे'र जाय है ।

२—मन लागे जणी मे ठे'राय देवा शूँ भी मन एक कानी लागे है ।

३—जो जो वस्तु आपाँ ने आछी लागे, वणी री छाप माँय ने पड जाय है । अणी वास्ते चावे जणी ही आपणाँ शोख (पसंद) री चीज रे साथे आत्मा रो ध्यान करवा लाग जाणो, के अणी आपणाँ शोख रो साची वा ठे'राव अणी'ज जगा' है । यूँ भी

(५) प्र०—हे प्रभो ! अनेक स्वभाव के मनुष्य ।होने से एक ही उपाय सब के अनुकूल हो नहीं सकता इसलिये कोई ऐसा उपाय बताइये कि सब के अनुकूल हो ।

३—ईश्वर मे मन लगावा शूँ भी घणी भट असप्रजात समाधि प्राप्त व्हे'जाय है । ईश्वर समर्थ ने के'हे, ने एक शूँ एक बडो ने समर्थ है । पण जठे समर्थपणा री अवधि है, जी शूँ बडो तो कई पण जणी जग्यो भी और नी व्हे', वो ईश्वर—

नी आप सो और बडो कठे तो

है बापडा सर्व बडा अठे तो (गीताजी)

मच ही समर्थ है । पाणी मे भी बीज ने उगवा री सामर्थ्य है, बडलारा बीज मे बडला रा म्होटो सँख वणवा री सामर्थ्य है । पण यू ही सामर्थ्या सबों मे आई कठा शूँ ने आँपाँ जाणाँ आँपाँ मे या सामर्थ्य है गजा जाणे म्हारा मे या सामर्थ्य है पण देखाँ हाँ के बी सामर्थ्या थिर नी है—परी नी है । जदी यो विचार मनम करे, के म्हारा मे बोलवा री, विचारवा री सामर्थ्य है मो कणी आधार पे ठेर री है, कठा शूँ आई ने कठे जायगा, ने ई री गजानो क्यो है, तो वो आँपणी जोर ने ईश्वर मे समझ लेगा । पेर आँपणी नाम शूँ कई भी पे'ली ज्यू बाकी नी रे'गा, पण ज्यो रे'गा वो ईश्वर प्रणिधान के' है । ज्यू—

“विंजन ज्यै यो विश्व है, सुर ज्यै ईश्वर जाण ।

वणी विना यो नी रहे, इण विन वठे न हाण ॥”

अणी ईश्वर प्रणिधान री ही गीताजी में भी मुख्यता है—

“धीरे ही शरणे जाव, सदा ही सब भाव शूँ ।

वों री कृपा शूँ पावेगा स्थान शान्ति अखट रो ॥

रगो पेर सबो र ही, तिया मे बैठ ईश्वर ।’

या नहीं ?

२०—परमयोग ईश्वरप्रणिधान (भक्ति) में भा रीति प्राप्त होजाना है ।

के जगी एक रे मिटावा शूँ बाकी रा चार ही मिट जाय । जणों पे के' वे है, के एक अविद्या ही सब क्लेशों रो मूल है । अणी रे मिटावा शूँ सब क्लेश मिट जायगा । अणी पे या वात आवे, के हरे'क क्लेश व्हे'ती वगत दूसरा क्लेश तो नी दीखे, ज्यूँ, राग री वगत मोह कठे परो जाय, ने राग री वगत क्रोध कठे रे' है—जो राग री वगत द्वेष नी व्हे' तो पाछो द्वेष री वगत कठा शूँ आय जाय है, ने राग री वगत द्वेष रे'वे, तो दीखे क्यूँ नी है । क्यूँके वो ही रीश करतो थको साथे ही प्रेम करतो' नी दीखे, ने यूँ हो प्रेम रे साथे ही रीश करतो भी कोई नजर नो आवे । जदो एक क्लेश नजर आवे वणी वगत बाकी रा क्लेशों री कई हालत व्हे' है । क्यूँके म्हाँणे क्लेशा ने मिटावणा है, ने सब क्लेशों रा मूल ई पाँच हीज है । अणों में भी एक अविद्या ही सर्वाँ रो मूल है । जदी या विलकुल मिटजावा री म्हाँने निश्चय कूँकर व्हे' । क्यूँके बे'धार मे देखाँ तो भी आज अणों साधनाँ रे घटा'जावा शूँ मनखाँ मे अतरी फूटारोळ मचगी' है । जठी देखो वठी मनखाँ रा जीव ठिकाने नी है । कोई कड उपाय सुख रो विचारे, कोई कठीने ही

विच्छिन्न (अस्तव्यस्त) कहते हैं और जब एक ही क्लेश प्रबल होकर अन्य सब दब जाते हैं तो क्लेशों की इस दशा को उदार (प्रबल) दशा कहते हैं । अब चाहे सो क्लेश इन (प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न, उदार) चारों हालतों में से चाहे, जिस हालत में हो परन्तु अविद्या ही उनका कारण (मूल) समझना चाहिये, अर्थात् सब हालतों में सब क्लेशों का कारण अविद्या ही है ।

(नोट) बालक में प्रसुप्त, साधक में तनु (सूक्ष्म), राग द्वेषवान में राग के समय द्वेष विच्छिन्न और द्वेष के समय राग विच्छिन्न

सू०—क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष-
विशेषः ईश्वरः ॥२४॥

१—क्लेश, कर्म-विपाक, ने आशय शूँ न्यारो, जीव शूँ विशेष ईश्वर है ।

२—दु ख, दु खरा कर्म, दु खरा फल, ने दु खरा विचार, यौँ शूँ न्यारो, ने जीव शूँ वत्तो परमेश्वर है ।

३—ईश्वर में, ने जीव में अर्थात् आँपाँ में, ने ईश्वर में कई फरक है ? अणी पे के' है, के बेसमभी, ने वीँ शूँ कर्म, ने वीँ शूँ घोंरा फल, ने वणी शूँ वणाँ रीँ याद, अणाँ में उलझतो रे' सो जीव, ने अणाँ में नी उलझे वो जीव शूँ विशेष है, ने वो ही ईश्वर बाजे है । अणी पे उपनिषद् में एक दृष्टान्त दीयो है, के एक पीपळी पे एक ही सरीखा दो परेख है । वणाँ में कई फरक नी है । सब बातों में एक सरीखा है, पण सब बातों एक सरीखी देखेवा पे भी वणाँ में यो भेद है, के एक तो पीपळा खाय रियो है, ने एक देखरियो है—पण खाय नी रियो है । जदी अणी खावावाळे देखवावाळा री आडी देख्यो, ने अणी री भी खाणो छूट जाय, ने खाणो छूट्यां घेडे, तो फेर दोर्या में और कई फरक नी रे' । क्यूके फरक तो यो एक हीज हो, जो वणी रे देखेवा शूँ अणी री खाणो छूटणो है, ने खघर पडणो भी वणी रे देखेवा शूँ है—

(५) प्र०—हे भगवन् ! ईश्वर के स्वरूप को मुझे समझाइये कि ईश्वर
मिसे करना चाहिये ?

प्र०—जिसे ऐश (घासना) . कर्म-कर्मफल और कर्मों के लस्कार

सू०—तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥२५॥

१—वणी में अनन्त ज्ञान रो बीज है ।

२—सारी समस्त रो मूळ वणी में हीज है ।

३—ईश्वर में अपार ज्ञान है ई शूँ यो मतलब नीके नरी तरे'रो ज्ञान है । पण ई रो यो भाव है, के जतरा ज्ञान है, वणी में शूँ, वा वणी रा आधार पे है, अज्ञान जणी ने के'है, वो भी ज्ञान रा आधार पे है, ने ज्ञान भी वणी रा ज्ञान रा आधार पे है । ज्यूँ—
“है भूलणो याद विचार म्हाँ शूँ” अर्थान् यो जो ज्ञान वाजे है, सो ईश्वर रा ज्ञान रे आगे, तो अज्ञान ही है, वो तो ज्ञानघन है ।

जाणू म्दूँ व्हें'गया ज्या ने, जाणू म्दूँ होयगा सबी ।

जाणू म्दूँ होरया सो भी, नी जाणे कोइ भी म्हने ॥१॥

श्री गीताजी

एक ही रथ में विराजमान नजीक'ही अकर्ता ईश्वर कशी साक्षान् वाता कर रिया है । जतरे वणी ईश्वर ने नी पिछाएया बतरे ही वो सवाल जबाब करतो रियो, जाएया बेटे, तो वो ही जाणे रथ रो एक अंग व्हें गयो ।

४—वणी ईश्वर में, ने आपोणे (पुरुष) ने सर्वज्ञपणो तो एक ही है । अणी'ज एकता शूँ आपो ने ईश्वर प्राप्ति व्हें'है, वा

(५) प्र०—ऐ प्रभो ! ऐसा ईश्वर कहीं है दिखने में तो नहीं आता ?

उ०—ऐ सांग्य ! तरे में जो हन घस्तुओं को जानने की शान शक्ति है पर उसी ईश्वर से ए और उसमे यह अनन्त ज्ञान है जानने वाले को धैरे से जानेगा ।

३—अगी में या हीज बात समझाई है, के एक शू एक में ज्ञान उतररियो है। पण अगी'ज रो ज्ञान पे'ली रो ज्ञान है, ज्यू उना पणो मूरज में शू ठामडे (वरत्तन) लीयो सो ठामडो भी उनां ज्ञे'गयो। ठामडा में शू पाणी लीयो, ने पाणी पू हाथ ने उना जणाणो, पण वो उना मूरज रो हीज है, ने अणी में शू ही जणावे। ज्यू—

“इन्द्रिया ने परे जाण, इन्द्रिया शू परे मन।
मन शू पर बुद्धी ने, बुद्धि शू पर सा वही ॥
चार ही मनु पे'ली रा मान ही जी महा ऋषी।
ई म्हारा मन ग भाव, याँरा सारा चराचर ॥
म्हारी उत्पत्ति नी जाणे, देवता ने महा ऋषी।
मू ऋषीश्वर देवां रो, सवां रो आदि कारण ॥”

अनादि अनन्त हैं अर्थात् समय शू ईश्वर नी वणे, पण ईश्वर, शू समय वणे है। पे'ली जो ज्ञान आयो सो अगी'ज परमात्मा शू आयो। अवार जो आय रियो है सो भी, ने अवे आवेगा सो भी एक अणी'ज शू है। पे'ली, पछे, अवार, ई वगत ग भेद हैं, ने ई भी एक सतत दृष्टा अविनाशी एक रस शू ही सावित ज्ञे' है। जी शू सवा रो गुरु यो ही एक है। आपा ने ज्ञान सिखावे वो, ने आपा में ज्ञान सीखे वो, दोई एक अणी'ज शू है।

४०—हैं साँग्य। तेरे माता पिता में और उनके भी माता पिता ने यों सब में - इसी परमेश्वर की दा हुई ज्ञानाप्ति है। क्योंकि तेरे में और तेरे माता पिता आदि गुरु जनो में समय का ही भेद है। परन्तु यह समय के भेद ने अलग बेंबल ज्ञान रक्ख है। क्योंकि—

सू०—तस्यवाचकः प्रणवः ॥२७॥

१—वणी रो ॐ कार नाम है ।

२—ॐ कार वणी रो नाम है ।

३—अश्या ईश्वर रो नाम याद करावावालो ॐ है । क्यूंके थोडो गूँ थोडी, ने अधिक गूँ अधिक, पकड विना नाम नी लेणी आवे । ज्यू-छेटी हेलो पाड गो (बुलाव गो) वत्तो पकड है, तो मन मे विचार करगो ओछी पकड है । मई पकड गूँ ही वत्तो पकड वणे है । ज्यू-विना विचार कीधो बोलणी नी आवे पे'ली मही विचार व्हेवे, पछे बी हीज कठ मे पकडाय, ने प्रकट व्हे' वणी ने बोलवा के'है । बोलवा मे भी दो भेद कीधा हे—एक तो राग रो, ज्यू कोई लै' लेवे, ने एक बातांचीतां करे सो । परन्तु राग गं बोलवो ने बातां रो बोलवा दोयां मे ही एक तरे'री धुन (ध्वनि) ब्रियां करे । वणी रा ही ई सब भेद है । वा वारीक गूँ वारीक धुन हीज ईश्वर रो नाम है ने वहीज सब अजर राग विचार मे मिली थकी है । वणी ने ही ॐ कार के'है । ज्यू—

एक अक्षर ॐ ब्रह्म, कानो चिततो रहने ।

जो देह तजने जावे, पावे वो परमा गति ॥१॥

श्री गीताजी

अर्णा'ज गूँ अर्णी ने अक्षर ब्रह्म के'है । क्यूंके वणी धुन रो वटे'री नाग नी है—एक समान सर्व व्यापक है । अर्णा'ज रा

(५) प्र०—ईश्वर के स्वरूप को सुनते ही मुझे बहुत शान्ति हुई, अब कृपा कर प्रणिधान विसे कहते हैं, सो नी आज्ञा कीजिये ।

यादृच्छेती रे' है। यो ही प्रणव रो जप, ने वी री भावना है।
अणी मरीखो सरल उत्तम और उपाय ही नी व्हे'शके। यो ही
माटूक्य उपनिषद् में ठीक समझायो है, ने सर्वत्र सत्शास्त्र या ही
घात के'है। यू जतरा भगवन् भाव शू नाम है, सब ही प्रणव है,
ने भावरहित भी वणी रा नाम तो प्रणव हीज है। अणी वास्ते
ज्य व्हे' ज्य वणी रो नाम, ने अर्थ विचारता रे'णो।

—ॐॐॐ—

सू०—तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥२८॥

१—वणी रो जप, ने वी रा अर्थ री भावना।

२—अणी रो जप करणो, ने अणी रा अर्थ ने विचारणो।

३—वणी ईश्वर रा नाम रो जप बारबार स्मरण करणो,
ने वी रा (ॐ कार रा) अर्थ री भावना करणी अर्थान् उपर
लिख्या माफिक भावना व्हे'णी ही ईश्वर प्रणिधान है। ई रा
रहस्य गुरु मुख शू माटूक्य उपनिषद् समझवा पे मालुम पड़जाय,
पे यो वास्त्व मे एक बडो सरल, ने जल्दी परमात्मा (दृष्टा)
रा प्राप्ति रा उपाय है। नाम बिना कोई कीने पिछाण नी शक-
नाम मय ही नव है। अणी वास्ते ईश्वर रा नाम व्हे' ता ईश्वर
भी आंछखाय जाय, जी केवे, के ईश्वर रा नाम नी है। वणी रा

(५) प्र०—प्रणव के द्वारा प्राणिधान कैसे किया जाता है ?

३०—प्रणव के जप के साथ प्रथम ब्रह्म उस के अनुसार ईश्वर
की भावना होते रहना ही प्राणिधान (भक्ति) है।

“ॐ तत् सत् यो कह्यो नाम, ब्रह्म रो तीन भाँति शूँ ।
अणी'ज शूँ ब्रह्मज्ञानी, ॐकार कहने सदा ॥”

श्री गीतानी

४—यूँ वणी रा ॐ प्रणव नाम रा अर्थ री भावना ही प्रणव (नाम) रो जप है । पण यूँ भावना छूट जाय तो पाछो प्रणव रो (ॐ कार रो) जप ज्यूँ व्हे' ज्यूँ ही करवा लाग जाणो । यो ही अणी रो उपाय है । अर्थ भावना ही समाधि है, ने ई रा (प्रणव रो) जपणो ही साधन है । साधन मे शूँ समाधि में, ने समाधि शूँ साधन में अणी सिवाय और कई धंधो ही नी है । अणी'ज पे कियो है के (म्वाध्यायादि०) अणी शूँ ईश्वर प्रणिधान व्हे' ने, भगवान् प्रसन्न व्हे, ने सब विघ्न स्वत ही मिटाय भट ही अपणाय लेवे ।

सू०—ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोप्यन्तराया
भावश्च ॥२६॥

१—ई शूँ आत्मलाभ व्हे' और विघ्न भी मिटे है ।

२—ई शूँ नजीक ही महारुख मिले, ने अटर्का भी मिट जाय ।

३—ऊपरला सृत्रा मे कियो, जणी माफिक ईश्वर मे मन लागवा शूँ एक तो योग रा सब विघ्न मिट जाय और यो लाभ व्हे', के आपणो ज्ञान आपा ने व्हे'जाय । या :वात सब योग रा साधन शूँ व्हे' हीज है । परन्तु पे'ली पे'ली साधन करवादावा

प्र०—और उपायो (अभ्यासों) बी अपेक्षा ईश्वर प्रणिधान (भक्ति) ने क्या विशेषता है ?

वारला मे हीज रे'वाय जाय है। वारला में शू अमली अतर रा (मोंयला) में आवणो घणो कठिन पडे है। अण। ज अटक में जमारा बीत जाय, । यो ही वृत्ति सारुथ, ने स्वरूपावस्थान पे ली कियोहो सो ही ई शू सहज मे मिल जाय । अणी सिवाय योग रा विघ्न भी अणी'ज भक्ति शू साथे ही आपो आप मिटता जाय हैं । परतु वा (भक्ति) और कणी में ही यूँ नो व्हे' । पछे ई ने यूँ निश्चय व्हे' जाय के म्हारा मे ही ई क्लेश आदि नी आय शके ने ई तो अविद्या रा कोधा थका है । जदी म्हारी भी आत्मा प्रभु में तो अणा री छाया भी नी प्रगे यूँ अणी ने साफ दीये ।

सू०—व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरति-
भ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थित-
त्वानि चित्तविज्ञेपास्तेनान्तरायाः ॥३०॥

१—व्याधि, न्त्यान. संशय प्रमाद आलस्य, अवगति भ्रान्ति दर्शन, अलब्धभूमिकत्व अनवस्थितत्व, ई नो चित्त ने ठे'खा नी दे । जी शू ई योगरा विघ्न वाजे है ।

२—रोग ढील, भे'म नेरप, आळस उलभा, उलटी सनभ,

(५) प्र० हे प्रभो ! आपने जो आज्ञा की कि ईश्वरप्रणिधान से योग के ध्यान मिट जाते हैं वे योग के ध्यान क्या क्या ह सो कृपा कर आपा कीजिये ।

४—ई नौ विघ्न है, ने एक शूँ एक मिल्या थका है। ई विलकुल मिट जाणा चावे। अणों रे मिटर्था बिना योग से अन्तराय रे' जाय। पण ई मिटे भी योग शूँ ही है, ने योग ने ई आवा भी नी देवे पण ईश्वरभक्ति आपर्गा मे व्हे'ने अणों ने मिटाय भी दे' या वत्ताई है व्याधि, = रोग। स्त्यान = ठालापणो। मगय = भे'म। प्रमाद = घोफाई। आलस्य = आलस। अविरति = उलभावट। आतिदर्शन = ऊँधी समझ। अलब्धभूमिकत्व = आगे नी चलाय शके। अनवस्थितत्व = ठे'रणी नी आवे। ई चित्त रा विज्ञेप माथे व्हे' तो विघ्न है, दूज्यूँ तो कई आडा नी आवे।

बेपरवाही), आलस्य, अविरति (विषयों में आसक्ति)
 आन्तिदर्शन (गलत समझ), अलब्धभूमिकत्व (याग के किसी भी अनुभव को नहीं पाना अथवा इस पार ही रुक जाना) अनवस्थितत्व (योग के अनुभव को पावर भी पीछे नीचे सरक जाना योगानुभव में स्थिर नहीं रहना)
 यही योग के नौ विघ्न हैं। ये ही योग से चित्त हटाने वाले हैं।

नोट—ये चित्त वृत्ति के चलने से होते हैं।

४—श्वास ने निकालणो ने खेचणो जो प्राण रो काम है, अणी शू भी मन शुद्धवे' ने ठे'रवा लाग जाय है। अणी ने प्राणायाम भी के' है। यो भी सहज ने स्वाभाविक उपाय, मन ने सुधार ने ठे'रवा रे लायक करवा रो है। अजाँ दो ही उपायाँ में सहजता है अर्थात् वे'ता ही सवा रे ही रे' है। केवल शारण (तळाव शू पाणी खेता मे ले जावारो धोरा) रो पाणी क्यारे वाळदेणो है अर्थात् यू नी, ने यू, जाण लेणो, ने पळे तो स्वत. ही वे'वा लाग जाय। क्यूँके स्वाभाविक ही स्वभाव है। वो स्वभाव पटकवा मे कई अवकाई? अस्वाभाविक स्वभाव ही जदी अश्यो कर-लीयो, जदी वे'ती वात रो कई भगडो।

सू०—विषयवतो वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धिनी ॥३५॥

१—कोई अनोखी चीज दीखवा लाग जाय अणी शू मन ठे'र जाय है।

२—मायला अनोखा सुख दिखवा लाग जाय, तो भी मन एक कानी लागे है (अणी ने विषयवती प्रवृत्ति के' है।

३—मन रो निर्मळ वे'णो ज्यू भक्ति रो उपयोगी है यू ही मनरो ठे'रणो भी भक्ति रो उपयोगी है। निर्मळ विद्यां विना मन

(५) प्र०—हे भगधन् ! और भी कोई इस अभ्यास का (तर्ज) है या नहीं ?

४०—हे प्रिय ! विषयों में ही चित्त चञ्चल रहा करता है। जब

जगा' मन ने ठे'रावा शूँ ई वाताँ दीखे है। क्यूँ के मन साफ ठिह्याँ विना ठे'रे नी, ने ठे'स्था-विना ई वाताँ दीखे नी, ने विना देस्याँ विश्वास व्हे' नी, ने अणाँ विना ही भक्ति कर शके, वो ऊँचो अधिकारी है, पूर्व-पुण्य री बात है।

४—यूँ अणाँ सहज दोही उपायाँ मे शूँ व्यवहार में मैत्र्यादि, ने त्याग मे प्राणायाम शूँ मन ठे'रे, जदी धारणा री योग्यता मन में आय जाय। वणी शूँ धारणा वैराग्यपूर्वक करे जदी दिव्य पाँच ही विषय रो साक्षात् कर शके, जदी लौकिक विषय में ही मन अश्यो लागे जदी दिव्य में लागे अणी रो के'णो ही कई। अवे वैराग्य रा कारण शूँ वणाँ में फँसे तो नी, पण शास्त्र, गुरु, ने अनुमान पे श्रद्धा आवा शूँ परमार्थ मे वणी री चाल तेज व्हे' ने वो झट ही मुकाम पे पूग जाय। अणी वास्ते विषयवती प्रवृत्ति ने भी विषय छोडणा है, तो भी काटा शूँ काटा री नाई तेज कीधा है।



सू०—विशोका वा ज्योतिष्मती ॥३६॥

१—नरमे' प्रकाश सुरता ने मिलवाशूँ भी सुरता ठे'र जाय है।

२—मायलो उजाळो वा समझ री निर्मळता व्हे' जाय, तो भी मन एक कानी लागे। (ई ने विशोका ज्योतिष्मती के'है)।

३—ई पे'ली रा ३५ वां सूत्र में किया सिवाय मन ठे'रवा रो एक यो भी उपाय है, के शोक रहित उजाळा री कानी मन रो

(५) प्र०—हे प्रभो ! और भी कोई एक तत्त्वाम्यास है ?

अणी ने भी समझणी चावे । या भी है, सविकल्पतावाळी'ज, पण अणी शूँ विशेष थिरता जणाय है । ज्या विदेह प्रकृति, लय ने अनुभव व्हिया करे है, अणी शूँ ई ने विशोका कियो है ।



सू०—वीतरागविषयं वाचित्तम् ॥३७॥

१—महात्मा रा चित्त रो विचार करवा शूँ भी आपणो मन ठेर जाय है ।

२—जणाँ रो मन ससार मे नी उळमे, अश्या (महात्मा) रो विचार करवा शूँ भी मन एक कानी लागे है ।

३—जश्या मनख रो विचार कराँ, वश्यो ही आपणो मन व्हे'जाय है । ज्यूँ वीर रस शूँ वीररस री उत्पत्ति व्हे'जाय, यूँ ही जणाँ रा मन में राग द्वेष नी है, अश्या महात्मा रो विचार करवा शूँ वर्णाँ रा चरित्र देख, शुण, वर्णाँ रा चित्ताँ री हालत विचारवा शूँ वश्यो ही आपणो भी चित्त व्हे'जाय है । जदीज के'वे के संगत शूँ गुण ऊपजे" ई शूँ महात्मा रा चित्त-चरित्र पे ध्यान देवा शूँ आपणो भी मन ठेर जाय है ।

४—अथवा जदी विषयवती ई दोही व्हेवा शूँ वैराग

५—प्र० हे योगनिधे ! और भी कौई एकतत्व का अभ्यास है ?

उ० महापुरुषों के चित्त का ध्यान करने से भी चित्त ठहरने क्षणता अर्थात् एकाग्रता-एकतत्व का अभ्यास हो जाता है ।

नोट—इसे वासना योग भी कहते हैं ।

वध्याधका ने नी मुवावे तो वीतराग वैराग्यवान जी बडा बडा शुक
 वामदेव तीर्थ-कर रा चित्त रो वा वर्गा रा चरित्र रो ध्यान
 करे तो भी चित्त वणी तरे'रो व्हे'ने ठेर जाय । जदी'ज—“सोड
 जस गाय भगत भव तरहीं ।” कियो है । जग्या चरित्र रो
 मनन अतश शूँ करे, वश्यो ही चित्त वणजाय । अणी वास्ते
 विषयवती नी मुहावे वा, अणी शूँ निकळणो व्हे' तो वीतराग रा
 चित्त ने विचारे, तो वो अणी शूँ ही आगे निकळ, ने वैराग्यवान
 री पदवी ने पाय ने मन ने वश करवा रा स्वभाववाळो व्हे'जाय ।



सू०—स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ॥३८॥

१—सपना ने नीद रा ज्ञान पे ध्यान राखवा शूँ भी मन
 ठेर जाय है ।

२—नीद ने सपना री ओगान, ने याद करवा शूँ भी मन
 एक कानी लागे है ।

३ आपो ने नीद आवे है ने सपना भी आवे है । या नीद, ने
 सपना री ओगान कठे रे है । शूँ नीद ने सपना री ओगान री

(५) प्र०—हं भगवन् ! हुनका और भी कोई उपाय हो तो घर भीआजा
 वरें । क्योंकि सब के एक ही उपाय अनुकूल नही
 हो सकता ।

उ०—स्वप्न में और नीद में जे ज्ञान रहता है उसने मन लगाने
 से भी चित्त को टहरने का अभ्यास होजाता है । यह भी
 एक तत्वाभ्यास है ।

कानी मन लागवा शूँ भी मन ठे'र जाय है अर्थात् नींद री अथवा सपना री जठे याद है, वठे मन लागणो भी मन ठे'रवा रो कारण है।

४—जो वैराग मे हीज उलझ ने ठे'राय जाय, तो शून्यता हीज रे'जाय, । जी शूँ वैराग्य शूँ प्रकृतिलय व्हे'तो दीखे, स्वप्न ने निद्रा रा ज्ञान रो अवलवन करे, तो वणी वैराग्य री शून्यता शूँ निकळ, ने ज्ञानावलबी व्हेवाय जाय । अणी तरे' शूँ ई एक कानी शूँ छुडाय, ने दूसरी कानी उलझाय नी दे', अणी री ओशान राख, ने आपाँ ने अनुकूल पडती व्हे' वशी कर्मशुद्धि करणी चावे, जणी शूँ तरे' तरे' रा उपाय भूमिकानुसार विकल्प कीधा है । कोई कणी रे, ने कोई कणी रे उपयोगी दवा (औषध) री नाई ई व्हे'है ।

सू०—यथाऽभिमतध्यानाद्वा ॥३६॥

१—मुरजी माफिक चावे जणीरा ही ध्यान शूँ भी मन ठे'र जाय है ।

२—मन लागे जणी मे ठे'राय देवा शूँ भी मन एक कानी लागे है ।

३—जो जो वस्तु आपाँ ने आछी लागे, वणी री छाप माँय ने पड जाय है । अणी वास्ते चावे जणी ही आपणाँ शोख (पसंद) री चीज रे साथे आत्मा रो ध्यान करवा लाग जाणो, के अणी आपणाँ शोख रो साची वा ठे'राव अणी'ज जगा' है । यूँ भी

(५) प्र०—हे प्रभो ! अनेक स्वभाव के मनुष्य ।होने से एक ही उपाय सब के अनुकूल हो नहीं सकता इसलिये कोई ऐसा उपाय बताइये कि सब के अनुकूल हो ।

मन ठे'र ने भक्ति रे लायक वणजाय है। क्यूके शोख री कानी वृत्ति ठे'रे हीज है, ने वृत्ति ठे'रे जठे भट्ट ही आत्माकार व्हे'शके है। क्यूके वृत्ति रो ठे'रणो ही योग है, ने जदी'ज आपणाँ आपणाँ ष्टदेव ने परमात्मा मान, ध्यान-करणो चावे, यू सब ही के'है। सूत्र ३२ मा री बात "एक तत्व रो अभ्यास सब विघ्न मिटावे है" या अठे पाछी याद कर लेणी चावे। ईश्वर प्रणिधान, ईश्वर ने जाग ने प्रणव रो जप करवा शूँ व्हे'है। अणी रो ही नाम एकतत्वाभ्यास है। यू ही अठा तक ईश्वर प्रणिधान री रीती बताई, अबे अणी सूत्र शूँ वणाँ रो खातो बीडता (बद करती) थकाँ सूत्रकार आज्ञा करे, के चावे जणी मे ही अणी एक तत्व रो अर्थात् भक्ति रो अभ्यास व्हे'शके है—

“जो जो होमे तथा खावे, देवे जो जो करे मदा।

जो जो तापे सभी सो सो म्हारे ही कर अर्पण ॥”

श्री गीताजी

या बात हीज जगा' जगा' गीताजी मे समझाई है। मन आपाणा मुहावती वस्तु ही मे जाय है। वणी मे ही ईश्वर रो भान व्हे'णो अणी सूत्र रो अर्थ है। जो धनुषधारी मुरलीधर जगददा चावे जरया ही स्वरूप मे यो एक तत्वाभ्यास व्हे'णो चावे। अणी बिना रो ध्यान तो ओछो है। जदी'ज भगवान हुक्स करे व-

“मानवी देह मे ग्हारो, मान नी मानवी करे।

जाणे जी रूप नी ग्हारो, सदा रो परमेश्वर ॥

अणी तरे' शूँ कणी एक रो ईश्वरभाव शूँ ध्यान करणी ने

८०—जो अपने धो सब से अधिक प्रिय हो, उत्ती एवन्त (वस्तु) मे इत्ति ठारा देने से नी चित्त इत्ति हो जानी है।

वो एक आपाँ रे प्यारो सुहावणो व्हेणो चावे, ने असुहावणो भी सुहावणा शूँ व्हे, ने सुहावणो भी परमसुहावणा (ऋषा) शूँ है। यूँ मुरजी व्हे'जणी रो ध्यान करणो, जो खोटी वस्तु सुहावणी व्हे'ने वणी मे भी यूँ ध्यान करे तो भी—

“फट वो होय धर्मात्मा, अखट सुख पाय ले’।

वाय्या, कमीण, नारथा भी, पाय लेवे परपद ॥”

श्री गीताजी

जदी उत्तम व्हे' जणी रो तो के'णो ही कही। शुद्ध ब्राह्मण, राजर्षि अणाँ रो तो के'णो ही कही। ३३ वां सूत्र शूँ अठा तक रो वर्णन शोधन कर्म बाजे है अर्थात् भक्ति रे योग्य व्हेवा रो काम। अणी ने ही गीता में कर्मयोग कियो है।

४—अथवा आपाँ ने' सुहावे जणी मे ही मन लगाय दे'। पग लगावे एक तत्व मे। स्वप्न, निद्रा रो ज्ञान रा अवलवन भी जणी वगत नी व्हे'तो पछे वणी वगत तो फेर ध्यान मे शूँ हटे हीज। अणाँ मे यो ३९ मौं सूत्र कियो है। ई ३२ वाँ शूँ प्रारंभ कर ने ३३ शूँ एक एक शूँ उत्तरोत्तर ऊँची भूमिका रा अभ्यास किया है। पण, अणाँ ने एक एक ने हीज भूमिका माफिक साध, ने पछे आगे बधाय है। यूँ अभ्यास पूरो व्हे'ने परं वैराग्य व्हे'णो ही कृत (अभ्यास री) कृत्यता (पूर्णता) है, या ही भाष्य में की' है। एक आज ने एक काले यूँ नी, पण एक एक ने पकावता जाणो यो भाव है। के' वे, के' दृढ़निष्ठा ही परमार्थ पंथ मे चाल है, ने दोडे ने ठे'र जाणो भटको है।

क्योंकि यों चित्त को ठहरने का अभ्यास हो जाता है। वर भी एक तत्वाभ्यास है।

प्र०—परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ॥४०॥

१—छोटा शू छोटी ले'ने बडा शू बडा तक यो ध्यान रहे'णो चावे ।

२—छोटी म्होटी चीजां मे शू मन रो भागणो मिटजाणो ही मन रो एक कानी लागणो है । शू भागवो छूटणो भी मन रो अधीन रहे'णो है । (अणी ने ही वशीकार भो के'हैं) ।

३—जणी चाल शू कोई पे'ली निशाणो लगावणो सींगे, वणी ने ठे'रयो थको ही निशाणो लगावणो पडे है । सो भी पूरी मोशीश शू लागे है । परन्तु हाथ जम्याँ केडे दोडता थका रे छेटी नजी'क सहज ही में लगाय देवे । शू ही पे'ली एक ही वस्तु पे मन ने ठे'राय ने अभ्यास करणो चावे, पछे वा चीज मुग्जी वं'ज्या ही रहे' । पण जदी हाथ जम जाय, जठा केडे छोटी शू छोटी ने बडी शू बडी सब जगा' मन ठे'रवा लाग जाय है । वयूँ पे मन ठे'रवा बिना तो कई सावित ही नी रहे' । ज्यूँ आपाँ एक कोकरो देख्यो । अबे देखणो के यो कोकरो बटे ठे'रवा शू गिर्यो । वयूँ के जमी पे तो बढकोई पट्यो हाँ. ने आपो भी बढकाई बटे ऊभा हा ने आखाँ भी बी पे बढकी ही पटी धकी ही । पण मन जतरे और वानी हो वतरे वणी री स्वर ही नी पटी । मन बटी आवतो ही दीख गियो । जी शू सावित वी'के

५ प्र—हे भगवन् ! अद्विक्त को एक तत्व वा अभ्यास हो गया दर कैसे मालूम होवे ?

२०—छोटे से छोटे और बड़े से बड़े जिस पदार्थ ने चित्त स्थाप

मन ठे'र्यां विना कोई साधित ही नी व्हे' । जदी मन ने वत्ती देर ठे'रावा रो अभ्यास करणो ही योग वाजे है, ने अणी रो हरे'क वस्तु पे ठे'राय ने अभ्यास कीदो जाय है । कोई के'वे के वुरी कानी ठे'रे सो भी अभ्यास हीज व्हे'गा सो वात नी । क्यू के दृष्टा रो कानी वृत्ति (मन) रो आवणो ही योग अभ्यास है, ने वो हरे'क वस्तु रे साथे दृष्टा रो भान रे'वा शूँ व्हे'है । फेर वा हीज शका व्हे'के वुरी कानी भी मन ठे'राय ने यो दृष्टा रो कानी रो अभ्यास कीधो जाय, तो वो योगाभ्यास वाजेगा ? तो अणी रो जवाब यो है, के अवश्य वाजेगा, जदी'ज कि'यो है के—

“जो वो महादुराचारी, म्हारी भक्ती'ज आचरे ।
साधू ही जाणणो वीं ने, वीं रो निश्चय-उत्तम ॥
ऋद वो होय धर्मात्मा अखूट सुख पायले' ।”

अणी सूत्र रो मतलब यो है, के जदी साधक एक वस्तु मे दृष्टा रो भान नी भूले, तो पछे वणी रे अश्यो अभ्यास व्हे'जाय है, के छोटा शूँ म्होटा तक कठे ही नी भूले, ने यो ही अठा वठा रो तृष्णा शूँ रहित वैराग है, के वणी रो मन दृश्य ने देख ने भी मायने उलटतो रे' जदी जाणणो, के अवे मन पे अधिकार जमवा लाग गयो ।

४—यूँ ३९ मा में किया माफिक ध्यान करताँ आय जाय जदी मन ने ठे'र वारी-हरकगी जगा' ठे'रवा'री तक (अवसर) मिलती

जाय, भागना छोड़ वहाँ ठहरने लग जाय तब समझना चाहिये कि अत्र चित्त को ठहरने की आदत पड़ गई है अर्थात् अब एक-तत्वाभ्यास (एकाग्र) करने की आवश्यकता नहीं रही ।

रेवे । जणी शूँ मतत साधन “यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र-
समाधयः” व्हे’तो रे’वे । क्यूँके अभिमत रे सिवाय तो यो ध्यान
करं ही नी है । अनिष्ट रे साथे भी इष्ट तो नी’ज छूटे, ने इष्ट
तो मव में आनन्द हीज है । अवे तो छोटा शूँ छोटा, ने बडा शूँ
बडा तक जठे मन जाय बठे ही वो’रो वो ही “जुग अंगुल कर
अंतर, हराम भज हि मोहि नात” व्हेवा शूँ मन आधीन व्हे’
जाय । मन रो चचळ स्वभाव छूट स्थिर स्वभाव व्हे’जाय । यो
अभ्यास शूँ व्हे’, ने अठा तक ही अभ्यास रे’ । पछे ता अभ्यास
नी पण स्वभाव पड जाय है ।

—० ❀ ०—

सू०—जोणवृत्तेरभिजातस्येव मरोगृहीतृग्रहणा-
ग्राह्येषु तत्स्थितदञ्जना समापत्तिः ॥४१॥

१—मन रो तरगाँ मिटवा पे मन निखाळम (दर्पण पिल्लोर)
गपटिक मणि जग्यो व्हे’जाय है । जदी वो अटकार इन्द्रिया और
घा’रली चीजाँ जणी मे लागे, वणी सरीसो ही वो व्हे’जाय है ।
अर्णा तरे’ री मन री हालत ने समापत्ति के’ है ।

(५) प्र०—एक तत्वाभ्यास (एकाग्रता वा अभ्यास) हो जाने पर
सप्रज्ञात समाधि किस क्रम से होती है ?

उ०—हैं साँख्य । जिस चीज की वृत्तियें ठहरने हवा जानी हैं वर
चित्त निर्मल स्थिर दर्पणवत् हो जाता है अर्थात् उन्नी
चञ्चलता घट जाने से वा पदार्थावार (पदार्थ जेहा) टाँटने

२—यूँ आधीन व्हेवा लागवा रा स्वभाव पे'ली, मन हरे'क चीज रा चलको (प्रकाश) वणी चीज शूँ न्यारो व्हे', ने ले' तो हो, पण आधीन विह्या केडे वणाँ चीजाँ शूँ मिलने वणाँ रो चलको लेवा लाग जाय है। जणाँ रा चलका मन मे पडे अर्थात् ज्ञान व्हे'है, वो चीजाँ ई है,—दीखे जी (म्होटी चीजाँ), जणी शूँ दीखे जी (इन्द्रियों), जी ने दीखे ज्यो (म्हू पणो), साफ काच 'सरीखो विह्यो थको मन अणा में तदाकार व्हे'जाय है। यो मन रो ठीक हिसाव पे आय जाणो है, (अणी ने हीज समापत्ति भी के' है)।

३—अतररी देर मन रा शोधन रा उपाय के'ने पछे शोधन विह्या मन री हालत अणी सूत्र शूँ आज्ञा करे है, के मन, ने मन री तरगाँ एक व्हेवा पे भो न्यारी है, ज्यूँ लोढा पे कीट न्यारो, ने भेळो है। अणी कीटरूपी तरगाँ रे मिटवा पे मन निर्मल काच ज्यू वा विना ले'रा रा तळाव ज्यू साफ रे'जाय है। पछे वणी मे हरे'क चीज साफ (स्पष्ट) दीखवा लाग जाय है, चावे छोटी व्हो'वा म्होटी, ने अशी साफ हालत ने समापत्ति के'है। अर्थात् जदी पे'ली कहा माफिक दृष्टार्पण व्हे'जाय है। जणाँ रा

लगता है। इसी का नाम संप्रज्ञात समाधि वा समापत्ति है—चित्त का स्थूल दिखना, सूक्ष्म इन्द्रियों के आकार दिखना और अहंकार के जैसा दिखना यह इस समापत्ति के भेद है।

(नोट) त्रिम चित्त की वृत्तियें क्षीण हो जाती हैं—कमजोर हो जाती हैं—टहरने की आदतवाली हो जाती है अर्थात् चित्त पगु हो जाता है, तब यह चित्त साफ दर्पण के जैसा हो जाता है। वृत्तियों की चञ्चलता हो चित्तदर्पण में मालिनता थी और उनका टहर जाना ही निर्मलता है, प्रत्येक वस्तु के तदाकार चित्र होता रहता है, परन्तु जब धिर होकर स्पष्ट

ऊपर अनेक उपाय बताया है। चित्त री वृत्तियाँ चित्त में बैठ जाय हैं। ज्यू तर्गाँ पाणी में ठेर जाय है, यू वृत्तियाँ रे समटवा री हालत री नाम समापत्ति वाजे है। अवे या वार आड, के यू शुद्ध चित्त शू लाभ कई ? अणी पे के' के अण्यो मन चावे तो (ज्ञान प्रहीता) अहकार पे लागे तो अहकार शू भी भिल जाय है अथवा इन्द्रियाँ (शब्द ग्रहण) में लागे तो वय्याँ ही वण रे', ने पदार्थ (अर्थग्राह्य) में लागवा शू वशी ही वस्तु वण जाय है, के अणी शू लाभ कई दूज्यू ही मन तदाकार बिया विना तां कोई चीज दोखे ही नी, जदी साधन शू शुद्ध मन तदाकार-पदार्थाकार व्हे' जाय है। अणी में कई वत्ताई व्ही', अणी री यो मतलब है, के विना शोधन कीधो मन पदार्थाकार व्हे', ने पाछो वो ही मन पदार्थ में नाम लेवा लागे, ने वणो भट भट पदार्थ री आकार ने फेर वणी में भान करावे है। ज्यू पडा (गेल) करती वगत दडी घडी घटी री ऊँची नीची फुरती शू व्हे' ती रे'। यू ही मन भी भट भट पदार्थाकार व्हे' तो रे', ने या हीज मन री अशुद्धता है। ने अणी 'ज शू मन खुद ही नश्य व्हेवा पे भी नष्टा री दावो करतो रेवे, ने अणी शू दुख पावे। पण यो शोधन बियाँ थको। मन फेर क

उस वस्तु के समान होन लगता है तब उसे समापत्ति अर्थात् समाधि कहते हैं। यह स्थिरता जितनी अधिक हो वह उतनी ही उँची समाधि समझनी चाहिये। इन प्रकार के चित्त के ये तीन भेद हैं—साहिर की वस्तुओं के इन्द्रियों के और आवार के आकार का होना। प्रधान पाठ के सत्रहवें अध्याय में स्पष्टज्ञान समाधि वाली यह उन्ना है ये तीन प्रकार बने हैं। सचाए च ने चित्त पदार्थाकार होना स्थिरता है, उसे चित्त को पदार्थ अलग करने है।

चीज शूँ मिल जाय, जदी वास्तविक दृष्टा ही दृष्टा व्हे'ने मन दृश्य व्हे'ने रे'वा लाग जाय, जणी पे कि'यो है के—

“देखू देखू छोडने दीखू दीखू ठाण ।

ई दीखू रो दीखणो ऊद्या अलख पिछाण ॥”

अलख पञ्चीसी

अणी शूँ सूत्र में आज्ञा कीधो के अहं, इंद्रियाँ, ने विषय चावे जणी रो ही आकार व्हे'ने रे'वा लाग जाय वा समापत्ति वाजे है ।

४—यू जदी चित्त व्हे जाय जदी क्षीण-वृत्ति रो चित्त वाजे, ज्यूँ विना पाँख रो पखेरू पडयो रे'वे । वणी वगत मन शुद्ध मणि री नाई निर्मळ व्हे'जाय, यो ही अणी रो साचो स्त्रभाव है । वृत्तिया तो अविद्या शूँ ही । अवे तो ग्रहण करवा वाळो अहं, विषय, इंद्रियाँ जणी मे चित्त लागे वणी'ज रो आकार व्हे',ने वश्यो ही रंग व्हे', ने वठा शूँ डगे ही नी । डगे तो जदी, के वृत्ति चंचलता क्षीण नी व्हे'तो वा व्हे'ती । अवे अणी दशा रो नाम समापत्ति ममभूणो के ठीक हिसाब पे आयो । अणी री चचळता ही रो उपद्रव हो, अवे तो है ज्यो ही व्हे'रियो है ।

सू०—तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा-
सवितर्का समापत्तिः ॥४२॥

१—वणी ममापत्ति मे शब्द (ग्रहण) अर्थ (ग्राह्य) ज्ञान (गृहीता) वा विकल्प मिल्या व्हे'तो वा सवितर्का समापत्ति वाजे है ।

“) प्र०—हे भगवन् ! प्रथम मुझे यह समझादिये कि स्थूल पदार्थ के

२—पे'लो पे'लो यो मन नाम, नामवालो, ने वणी रो विचार, अर्गा तीनां रो ही भेलो ही चलको ले'है (अणी ने सवितर्का समापत्ति के'है) या अणी रे सुधार री पे'ली दशा है ।

३—अणी रे पे'ली रा ४१ मा मृत्र शूँ समापत्ति कणी ने के' है या बात बताई । अवे वणी समापत्ति रा भेद बतावे है, के-वा समापत्ति दो तरे'री रहे'हैं—एक ने सवितर्का, ने दूसरी ने निवितर्का के'वे है । सवितर्का वणी ने के'वे, के-मन तदाकार तो रहे'जाय, पण शब्द (ग्रहण) अर्थ (ग्राह्य) ज्ञान (गृहीता) अर्णा तीनां रा ही विकल्प वणी मे मिल्या थका रहे' अर्थान मन अर्णा तीन ही विकल्पां ने लीर्धा थकां जो तदाकार रहे' जाय वा सवि-तर्का समापत्ति बाजे है । ज्यू-घोडो, अणी मे मन तदाकार ब्हियो, तो वणी वगत तीन बातों मिली थकी है । वर्णा मे मन तदाकार ब्हियो । ज्यू-घोडो अशयो नाम (शब्द), ने ठाण मे वध्यो गुरो-वाळो जनावर (अर्थ), ने वणी रो ई तीन बातों गामिल ही ले'ने मन तदाकार ब्हियो, ने अणी तरे' शूँ सारा रो हो मन तदाकार हरे'क वस्तु मे रहे' है । भेद अतरो ही है के थिरता लीर्धा थकां, ने आगत लीर्धा थकां शोधन कीधो । मन थिरता लीर्धा थकां रहे' है, जी शूँ ही वणी ने समापत्ति के'वे है । परंतु या विकल्पवाळी रहे'वा शूँ पे'ला (नीचा) दर्जा री है । वयूने

आवार चित्त बैसे दिखता है और इस हालत को क्या कहते हैं ?

२०—जिसमें शब्द, शब्द वा अर्थ और शब्द वा ज्ञान के तीनों बन्धना मिली हुई होंवे और चित्त छर जावे (इन तीनों जैसा मालूम होवे) तो उसे सवितर्का समापत्ति (ननधि)

विकल्प तो वो वाजे है, के (९ मा सूत्र में) जणी में खाली शब्द (नाम) हीज व्हे'जणी रो अर्थ देखो तो कई नो लाधे, ने जाणे कईक अर्थ व्हे' ज्यू जणाय ज्यू—“सूरजपुर संध्या करे, वंध्या सुत रो वंश ॥” यू ही घोडो, अश्व, तुरंग, ई केवल शब्द है, अणाँ रो अर्थ जाणे कईक वस्तु न्यारी व्हे' ज्यू जणाय, ने वो पायगाँ में बंध्यो है, यू भी देखे, ने आपाँ वणी ने ओळख लीधो, यू भी जणाय । जणी वगत चावे जणी चीज रो चावे, जो ही नाम लो, ने चावे, जो ही देखो, शुणो, वा चावे, जो ही विचारो वणी मे ई तीन ही बातों मिली थकी रे'गा, ने ई रे'गा वठे तर्क अर्थात् हेरफेर भी व्हे'गा । अणी तरे' शूँ आत्मा-ब्रह्म रो मनन भी सवितर्क व्हे', ने वणी में भी ई तीन ही विकल्प लागा रे'है, ने जतरे यथार्थ ज्ञान भी नी व्हे' । फेर अणी रो खुलाशो आगे आये है । सूत्रकार एकतत्वाभ्यास कियो, वणी रो ही खुलाशो कर रि'या है अर्थान् वणी री विधि ने वणी री बारीकी दर्जा, ने सिद्धान्त समझाय रिया है, के एक तत्वाभ्यास यू व्हे'है ।

४—वणी समापत्तिरा भी दो भेद है—सवितर्का, ने निर्वितर्का । जणी मे शब्द, अर्थ, ने ज्ञान रा विकल्प मिल्या रेवे, ने अणाँ में मन रँग्यो रेवे, वा सवितर्का वाजे है । (विकल्प रो लक्षण ९ मा सूत्र मे कियो है) क्यूके—विकल्प रेवा शूँ सवितर्क रेवे हीज, पग

कहने है । यह निर्वितर्का मे नीचे दर्जे की है, इसमे ही स्थूल हृदय की एकाग्रता समझो ।

(नोट) नाम, पदार्थ और उसकी समझ मिली हुई रहने पर चित्त का दिग्बना, स्थूल पदार्थ के आकार चित्त का दिखना है । उसको सवितर्का समापत्ति भी कहते हैं ।

घटे हो रगाव शूँ समापत्ति भी वही'हीज । अणी शूँ वितर्क मेती
ठ'ग. वीं हालत ने सवितर्का समापत्ति के'वे हैं । सूत्र १७ मां मे
चार सप्रज्ञात समाधि में पे'ली वितर्कवाली चञ्चलता वाली समाधि
का'है. वणी रो ही यो म्यष्ट है ।

—ॐॐॐ—

मू०—स्मृतिपरिशुद्धौस्वरूपशून्ये वाऽर्थमात्र—
निर्भासा निर्वितर्का ॥४३॥

१—याद शुद्ध व्हे'जावा पे, केवल एक पदार्थ-कार ही प्रकार
वृत्ती धर्मा निर्वितर्का समापत्ति बाजे है ।

२—यूँ तो वत्तो सुधर जाय, जदी अणा तीनो रा ही न्यारा
न्यारो ज्ञान व्हेवा लाग जाय, या वणी शूँ वत्ती हैं । अणी ने
निर्वितर्का भी के' है ।

३—समापत्ति वा के मन तदाकार (वणी पदार्थ र मरीग)
जें'जाय । वणी में शब्द, अर्थ, ने ज्ञान मिल्या यदा र'व अर्गन
अणी तीन वाता ने ले, ने तदाकार व्हे', वा सवितर्का समापत्ति
बाजे । जणी मे ई तीन वाता नी रे', केवल एक हीज बात र'
पा निर्वितर्का समापत्ति बाजे । ज्यूँ-घोड़ो या नाम पायगा,

(५) प्र०—इस तरह मैने स्थूल (सवितर्का) समस्त स्त्री, अथ इतने
भागों की सूक्ष्म हालत का नाम और लक्षण समझाये ।

२०—उपर्युक्त तीनों स्थूल विबल्पो से एतद्वर हेतुल सूक्ष्म पदार्थ
मात्र की तदावस्था धित की रह जाती है, तब उसे निर्वि-

यो नाम, देख्यो यो नाम, ई तो तीन ही नाम ही ब्हिया, ने नाम ब्हिया, यो भी नाम हीज ब्हियो, जदी जाणणो, के अये या शुद्ध वही । क्यूँके अणी शुद्ध याद रे पे'ला अशुद्ध याद ही, अर्थात् एक गोटाळो हो । ज्यूँ—घोड़ो ठाण मे है, या मू जाणूँ हैं, अणी वात ने न्यारी न्यारी करे'ने देखी जाय, तो गोटाळो वखरे, ने शोधवा शूँ ज्या हालत व्हे', वा शुद्ध याद "स्मृति शुद्धि" बाजे । क्यूँके गोटाळा री स्मृति अशुद्ध हो । वणी में वस्तु तो एक ही दृश्य है, ने दीखे, देखावे, ने देखे, अर्थ (ग्राह्य), शब्द (ग्रहण), ज्ञान (ग्रहीता), यूँ न्यारा व्हे'ज्यूँ जणाय, जदी'ज कियो है के—

“काँकर के'वे मनख ने थूँ पण मूढ अजाण ।
आँपाँ री वार्ताँ शुणे उद्या अलख पिछाण ॥”

अलख पक्षीसी

अणी हालत मे योगी रो अहकार भी दृश्य (दीखवावाळो) व्हे जाय है । पण विलकुल ही पड नी जाय है, पण जाणे पडग्या व्हे' ज्यू भान व्हेवा लागजाय है । अणी हालत ने ही निर्वितर्का समापत्ति के'है अर्थात् दृष्टा, दृश्य रो सवितर्का वच्चे ही निर्वितर्का मे विशेष विभाग व्हे'जाय है, अर्थात् गोटाळो वखर गियो व्हे' जश्यो विभाग अणी में व्हे' है । वणी मे यो गोटाळो रे' ज्यू दीखे ने अणी मे नी व्हे' ज्यू दीखे । साधारण अशुद्धि मे गोटाळो हीज दीखे यो भेद है । भाव यो, के शब्द तो कोरो शब्द हीज व्हे'है । वणी मे अर्थ, ने ज्ञान नी व्हे'है । शब्द रे साथे अर्थ रे'तो व्हे, तो

तर्का समापत्ति कहते हैं । इस में चित्त की अधिक निर्मलता हो जानी है, जोकि सपितर्का का अभ्यास करते करते सत्य हो जानी है ।

सू०—एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्म- विषया विख्याता ॥४४॥

१—यूँ ही मही चीजाँ री भी समापत्ति समझ लेणी, जणी ने सविचार निर्विचार के

२—यूँ मही चीजाँ रा मिल्या चलका ले, या बड़ी चीजाँ रा ले' जणी यूँ वत्ती बात है, ने अणी ने सविचारा समापत्ति के है। ने मही चीजाँ रा तीन ही न्यारा न्यारा चल का व्हे' तो य भी म्होटा रा न्यारा न्यारा ले' जणी यूँ वत्ती बात है, ने अणी ने हीज निर्विचारा समापत्ति भी के' है।

३—ज्यूँ कगी म्होटी चीज मे मन रो ठेरणी सवितर्का वाजे, ने वणी रा शब्द, अर्थ, ज्ञान रो न्यारो विभाग व्हेवा पे निर्वितर्का समापत्ति वाजे है। यूँ ही चीज पे मन रो ठेर जाणो, ज्यूँ समय, मन, विचार, बुद्धि आदि पे सविचार वाजे है, ने अणी रा भी नाम (शब्द), अर्थ, ने ज्ञान रो विभाग व्हे' जाणो, निर्विचारा समापत्ति वाजे है। सवितर्का ने निर्वितर्का मे म्होटी चीज

(*) प्र०—हे भगवन् ! इन दोनों समापत्तियों से भी कोई ऊँचे दर्जे की समापत्ति होती है या नहीं ?

उ०—सूक्ष्म बान (विषय) लेकर चित्त की तदाकारता सवितर्का और निर्वितर्का कहती है, और सूक्ष्म विषय में ये ही सविचारा और निर्विचारा कही जाती हैं। जितना सूक्ष्म विषय और जितनी शुद्धता अधिक हो, उतनी ही ऊँची दशा समझनी चाहिये।

है। क्यूँके म्होटी चीज मही शूँ मही चीज मे शूँ आवे है, ने वणी मे ही पाछी समाय जाय है। अणी रो विचार नाम, अर्थ, ज्ञान सहित कर तदाकारता व्हे'जाणो भी सविचारा है, ने अणी मे भी नाम, अर्थ, ज्ञान, अलग कर देखणो निर्विचारा है अर्थात् प्रकृति भी जदी दृश्य व्हे'ने दीखवा लाग जाय, अर्थान् सब शूँ मही भी है, या ही प्रकृति व्ही'ने जदी याही निर्विचारा समापत्ति शूँ दीखवा लाग जाय, जदी अणी रा विकार री तो बात ही कई।

४—वारी की (सूक्ष्मता) री हद ठेट प्रकृति तक है, यूँ एक शूँ एक स्थूल है, ने एक शूँ एक सूक्ष्म, पण अठे सूक्ष्म शूँ मतलब शब्दादि विकल्पादि सेती व्हे'ने वणौ विकारौ ने छोड ने-पष्ठितत्र रा चक्र पे बुद्धि चाल, ने चोईश तत्वाँ मे बुद्धि रमती रमती सूक्ष्म री कानी वधे, अणी ने सूक्ष्म विषय कियो। मिश्र पदार्थ, ने अविमिश्र पदार्थ। मिश्र पदार्थ विकार, ने अविमिश्र प्रकृति विवृति ने जागणी चावे। यूँ प्रकृति मे मतो व्हे'णो सूक्ष्म विषयन्व गण्यो है। पण व्हे' अणी विधि शूँ।

(तन्मात्रा गधादि) सूक्ष्म है वैसे सब से सूक्ष्म विषय किसे समझना चाहिये ?

उ० सूक्ष्म विषय की अवधि शून्य पर्यन्त है अर्थात् सब से सूक्ष्म विषय अव्यक्त (शून्य) है।

सू०—ता एव सवीज समाधिः ॥४६॥

१—ई हीज सवीज समाधि है ।

२—पण अणी मही मे लागो रे', जतरे भी महामुग्ध मे कमर रे' जाय है (अणी ने सवीज समाधि के' है) ।

३ - ई चार तरे' री जो पे'ली समापत्ति की' ई हीज सवीज समाधि वाजे है । क्यूँ के अणी मे चित्त अवश्य ही पदार्थ रे जश्यो व्हे'जाय है । चावे पदार्थ महामूढ्म व्हे' वा म्होटो, पण पदार्थ र आकार हीज मन व्हे'ने दीखवा लाग जाय, वा समापत्ति वाजे है । पण दीखे दीखे जतरेक देखवा भी मन लाग जाय है, न अणी रो (मनरो) देखवापणो हीज अनर्थ रो मूल है । या ही सवीजता है । यद्यपि समापत्ति मे मन रो देखवो, पढा री ढी र हाथ रे अटकवा जतरो थोडो है, ने कणी बगत हाथ रो अटकाय नी व्हे' तो भी पे'ली रा वेग शूँ, वा टाका गाय हीज है, ने पाछा हाथ लागजावा शूँ उँचो टाको लागवालाग जाय है । ये ही अणी चार ही समापत्तियो रो हाल है, के मन ब्रह्म रा जोर गूँ आपणी मत्ता (अस्तित्व) मे आवे, ने फेर ब्रह्म रा जोर गूँ देखवा रो दावो करवा लाग जाय । पण अठे एक बात याद राखवा री है, के चावे मन देखवा रो ही दावो करे, पण बारंवार कणी रो

(५) प्र०—हे भगवन् ! अब तो अव्यक्ता (शून्या) वार होना ही एतन समाधि (समापत्ति) समाप्तना चाहिये क्या ?

उ०—हे सौम्य ! शून्य (अव्यक्त) पर्यन्त जो समापत्ति (समाधि) बरी गई, ये ही सवीज है (फिर जन्म देने वाली है) इत्य-

दीखणो ही देखवा रा वणी रा भ्रम ने मिटावतो जाय है, ने पड़े वणी रो देखवो भी दीखवा मे आवा लाग जाय है, ने यूँ कम क्रम शूँ वधवा रा ही नाम सवितर्का, निर्वितर्का, सविचारा, निर्विचारा ब्हिया है। समापत्ति मे आ विशेषता है, के वा भले ही सर्वाज ही व्हे', पण अणाँ मे शूँ नीचे नी उतराय है, यो ही डंग्वरप्रणिधान मे, ने दूसरा अभ्यासादि रा साधन मे भेद है। अन्य अभ्यास वैराग्य शूँ कठिनता शूँ ज्या सप्रज्ञात व्हे' जणी मे वगे ही पडवा रो (रुकवा रो) भव प्रत्यय रे' जाय है। पण वा वात अणाँ समापत्तियाँ मे नी है—जी के एकतत्वाभ्यास शूँ व्हे' है ज्यूँ—

‘ निराकार भजे वीं ने, पडे मे'नत मोकली ।
 महारे मे मन डेवाँ रो, सर्वाँ रो गुण अर्जुण ॥
 मूँ हरे जन्म ने मोत, देग्दार करुं नहीं ।”

अणी मे अणाँ दो हीज समाधियाँ रा भेद बताया है। अणाँ ने सर्वाज्ञा (बीजवाणी) यूँ की' के निर्बीज है, यो भी भान व्हे' गो बीज हीज है। क्यूँके अणी मे भी शब्द अर्थ, ज्ञान, गुप्त रूप शूँ हीज है।

२—वीं हीज विषय सूक्ष्म व्हां'वा स्थूल, पण विष या करावे

रिये निर्वीज समाधि ही सब से श्रेष्ठ (परम समाधि) समझना चाहिये। हम निर्वीज को हो चैतन्य समाधि भी कहते हैं और हम अन्य समाधि को जड समाधि कहते हैं। क्योंकि इनमें जडता का (दृश्य का) बीज रह जाता है, समय पाकर हमके फिर उठ आने का संदेश रह जाता है।

!—इन्ही को पण्डे भवप्रत्यय के नाम से कहा या

जदी पे ली माफिक एकतत्व रो अभ्यास करतौं करतौं समापत्ति तक पो'च जाय, ने वणी मे भी निर्विकार समापत्ति सूक्ष्मविचार भी आत्मा रे दृश्य वहे'ने दृष्टा वहेवा रो दावो छोडवा लाग जाय, जदी जाणणो के अबे निर्विचारा समापत्ति री स्पष्टता वहे'गई है। अणी हालत मे अबे जाणे आत्मा हीज मय आप नृष्टापण ने नी छोडवा पे दृढ़ वहे'गयो वहे' ज्युँ वहे'जाय है, अथवा जो तरंग दृष्टा वहेवा ने आवे वा ही दृश्य वण जाय, जाणे कालीनाग रा माथा पे भगवान् रो नृत्य वहे'रियो है। ताळी, काढवा ने फण उठावे उठावे जतरे तो भगवान् वणी पे ही चढ़-या थका लाधे। श्री राधिकाजी रो प्रेम कृष्ण मे, ने श्रीकृष्ण रो प्रेम राधिकाजी मे वहेवा पे भी अबे श्री राधिकाजी रो मान, ने श्रीकृष्ण भगवान् रो मनावणो अध्यात्म प्रसाद वाजे है। अठा पे ली री मे रुईक रुईक कोशिश रे'ती ही के दृष्टा मे सब है, पण अध्यात्मप्रसाद वहेवा पे कोशिश ही छूट जाय, आपो आप ही नृष्टा मे पण वहेवा लाग जाय। अणी ने के'वे है, निर्विचार री स्पष्टता और आत्मा (सम्बन्धी अध्यात्म) री कृपा वा प्रसाद वा प्रसन्नता।

४—जदी चार ही मवितका निर्वितका ने मविचारा निर्विचारा समाप्त है जदी निर्विज कंकर ने कर्षा वही ? जदी

निष्काम योगी प्राप्त कर लेता है, तब उसे भी भीतरी अनुभव मिलने लगता है। इसी को अध्यात्म प्रसाद कहते हैं। अर्थात् निर्मल निर्विचार मे अध्यात्म प्रसाद मिलता है।

(नोट) नेवा मेवानुकरणार्थमप्यज्ञानज तम

नाशयान्यासभावस्यो ज्ञानदीपेन भास्यता ॥

निर्विचार निर्मल वहे' तो माँय ने ही वणी रे मदद खुल जाय,
जगी शूँ मलिनता रो बीज आपो आप ही नाश वहेवा लाग जाय ।
या निर्मलता अतरी निर्मलता ज्यूँ नो है, पण खुद आपणी दृढ
निर्मलता है, अणी शूँ एक साथे नवी नवीज वात जणाय जाय ।
जाणें घोर नीद में शूँ एक साथे ही जाग गिया । पण एक भी वात
अणी री वणावटी नो वहे' सब साच ने यथार्थ ही मूढा आगे
आव । अणी रो नाम अध्यात्म प्रसाद यथार्थ ज्ञान—साचो
नादान-कार है ।

सू०—ऋतभरा तत्र प्रज्ञा ॥४८॥

१—वणी हालत री बुद्धि ने ऋतभरा के' है ।

२—अणी मायली मदद शूँ सोची हीज समझा जे' जाय है ।
(अणी ने ऋतभरा के' है) ।

३—यद्यपि आगे री हालत सद्गुरु ही जाणें, पण जतरों
संकेत कराय वतरो तो करणों ही पडे—समझणा समझा ही लगा ।
पण समापत्ति रो आरंभ कीधो, वटा शूँ ही अनुभव री नाद रा
पगत्या शुरू वहे गया । मदद, अर्थ, ने ज्ञान रो तां पें ला पगत्या
शूँ ही अनादर वहेवा लाग गया । पण सवितर्क ने समझा
यकार निवितर्क री वात अनुभव मे आय जाया, ने पं

(५) प्र०—हे भगवन् ! अध्यात्मप्रसाद होने पर फिर क्या हास्य
होती है

सविचारा ने निर्विचारा भी अणों रा ही बारीक भेद है, या देग लेगा । पछे निर्विचारा मे अत्यन्त स्पष्टता शूँ अध्यात्मप्रसाद गे अनुभव व्हेवा लाग जायगा । वठे वो अनुभव कश्योक व्हे'तो व्हे गा, अणी पे सूत्रकार आज्ञा करे, के वणी अनुभव रो नाम है ऋतभरा । ठीक है, शब्द री गति नी व्हे' वठे भी कई तो के'णो पडे ही, पण शब्द रो एक खोटो स्वभाव थो है, के अनुभव ने के'णो नावे । वणी शब्द री चसक शूँ भाँप ले', ने दूजा पाछा उत्तर जाय । बी जाणे ऋतभरा भी अतरी कीडयाँ री नाई दर मे घुमती व्हे'गा, परतु ऋतभरा कीडयाँ मायली कीडयाँ नी है, पण ता हया है, ज्या कीडया सेथी दरने उडाय दे' है । ऋतभरा साँव ने हीज जठे स्थान है । भूठ रो मस्कार भी नी व्हे' वणी अनुभव ने ऋतभरा के' है ।

५- अणी बुद्धि रो नाम ऋतभरा है । ऋतभरा व्हेवा शूँ अणी मे भूठ रो लेश ही नी रंवे है, अणी बुद्धि या हीज है और नी है । या योग मे निर्विचार री भी फेर निर्मलता व्हे' जदी व्हे' है । अणी वान्ने योगी अग्या व्हे', बी हीज अणी ने थूँ जाणे है, और जोई अणी री चर्चा करे वो जाणे आँधो भडवेटा रयावे, नुँ समझणा चावे । या तो योग ग पर री हीज निज बात है ।

२०- उग्ये ऋतभरा नाम की बुद्धि प्राप्त होती है (सत्य की पंथर को ऋतभरा कहते हैं ।)

(२२) तेन मननयुक्ताना भवता प्रतिपत्तिरसु ।

इहानि बुद्धिर्योग न येन मामुपयानि ने ॥३॥

सू०—श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेष- पार्थत्वात् ॥४६॥

१—गुणवा रा अदाजा रा अनुभव शू भी अधिक यो अनुभव है. अधिक कई, अन्य ही ।

२—वा माची समझ (ऋतभरा) अवार गी अणी समझ में आय ही नी शके, वणी रो अठोटो बध शके । क्यूँके वा तो बात ही ओर है. ने अणी शू वत्ती है ।

३—भगवान् मृत्रकार नाळ ने तै'कर चानखी पे आय गया है अर्थान लाग लपेट छोड दीधी है । ऋतभरा रो खुलागो करवा रो दया करे है और उचित भी है । क्यूँके मृत्रकार योग बे'गिया है, ने योग ही अणी रो खुलागो नी करे, तो कई पडतल जीभ्या जोगी बाळा करेगा ? जो मृत्रकार रे साथे साथे बगेयर पगन्या पहने चानखी पे पहुँच गयो, वणी रे तो मे'ज मे ही यो लय प्रत्यक्ष ही है. ने नीचे है. वो तो समझ ही क्यूँकर सके । पण अठे या मतलब है के जो एक् पगन्या ही नीचे है वो अणी बात रा अधिकारी है ने यूँ ही योग सब अधिकारियो ने यथाक्रम प्रांगे प्रांगे बढाय रियां है । अवे आपगो विचार ने अठे पिडा निने है. वणी ने बढाया (विदा किया) जाय है । विचार दगे ने

(५) प्र०—ऋतभरा एहि बिसे धरते है "

६०—मुनी और अदाज की हुई उत्तम धरतु से तो किसी अधिक और अन्ध धरतु को वह एहि धरताती है ।

ऋतभरा कशी ऊँची हालत व्हे'ती व्हे'गा, वठे कई सुर व्हे'गा, देखो भागवतजी मे वठा रो हाल व्हे'गा, वा वेद पुराण कणी पोथी मे नी तो कणी महात्मा ने पूछा, जी अणी वात ने जाणता व्हे', वगाँ शू वाकब व्हे'जावा । सूत्रकार आज्ञा करे के यूँ नो' । चावे जतरो शुणलो, ने अदाज बाँधलो, पण या तो न्योरी'ज है, ने मज शू अधिक है, ने अनोखी है । अणी शू ई ने प्रत्यक्ष करो नदी ज जाण शकोगा । विना अनुभव तो ससारी वात रो भी अदाज नी बवे, जदी सब शू अधिक, ने अनोखी यूँ कूँकर जणाय शके । जो थे म्हाका के'वा माफिक आय रिया हो तो समझ रिया हो, ने नी तो भूल्या जठा शू ही गणो, कई अटकाव है, शूधी वात, ने महालाभ है । कोडो कोडी रे वास्ते विचार करो तो थोडो थोडो अणी रो भी विचार करो, आप शू आप बधता जाओगा । विचार रो तरज तो म्हे चताय रिया हा । अवे थाणे ही हाये है । यागा ही पर रो वस्तु थे ही भूलो, ने वतावा पे भी नी हेरो, रोयो रे यगाँ ने भी तुम्हायो तो थाँणी मुरजो, म्हेतो बराबर अगट प्रकाश ले'ने क्वा हं, मन व्हे' जदी ही हेर लो, जाणे यूँ भगवान मुबद्दाग आज्ञा कर रिया है ।

२—नयूँके दमगा रा अठोटा, शुणो वानाँ, अणी माची प्रायत सक र नय पण हा नी शक । पे'ली तो मनग्र र विचारग रो गित हीन भूल शू मुस्वान व्हे'है, ने व । मे फेर एक पे एक बसता तय है । अरे अगागे मे योग्यो असम्भव व्हे' उयूँ अणी अतभग प्रकाश विना अनागे हीन है, ने “अंधेनेव नीयमाना

यथान्धा" ज़े'ता हो रे'है । अणी वास्ते योगानुसार शाति धीरप शूँ चाले तो निर्विचार री फेर निर्मळता ज़े'ने परम पद ने ने'ल में ही पाय जाय । पण या बात शूँ नी, विशेषता है या नी भलणी । दृज्यँ अठा रो बीज रे' जायगा ।

सू०-तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबन्धी ॥५०॥

१—श्रुतभरा रो संस्कार (अनुभव) दूसरा सब अनुभवों रो बाधक है ॥

२—वणी शूँ ई मारा विचार रुक जाय है, ने वणी रा ही वणी रा विचार रे' जाय है ।

३—अठे कोई के'वे के अशी उत्तम हालत है पण पा'ने घटा शूँ उतराय जातो ज़े'गा । अणी पे सूत्रकार आजा बां के श्रुतभरा रो अनुभव दूसरा अनुभव ने आवा ही नी दे', मतत श्रुतभरा रो अनुभव जाग्रत ही रे' । दूसरा संस्कार रो आवणों ही उतरणों है । पण अठे तो बड़ा शूँ बड़ा ने उत्तम शूँ उत्तम अनुभवों ने शिक्षा मिल गई है अठे तो—

(५) प्र० - हे भगवन् ! इस अलौकिक श्रुतभरा दृष्टि से जो देखने सुनने तथा अनुमान में भी नहीं आ सकना ऐसा उत्तम सुख (अनुभव) क्या पहुँचने वाले को ही होता है यह मेने समझ लिया । अब इससे बाद क्या हालत होता है तो अपना बीजिये ?

“जगी लाभ वचे वत्तो, और लाभ गणे नही ।
जणी ने पाय ने म्होटा, दुख शू भी डगे नहीं ॥”

श्रीगीताजी

री हालत व्हे'गई है । कई सूर्यनारायण ने यो विचार व्हे'के यानी
व्हे'जो अंधारा मे ठाकर खाय जाऊ, । अणी पे एक बात है, के
एक परणी छोरी वगी री शानी री कुआरीछोरियाँ शू वणी रा
अनुभव री बातों कर री'ही । विचारया वी भी आपणी बुद्धि
माफिक वणाँ वानाँ ने समझवा री कोशीश कर री' ही । वणी
के तो या भी के' दीनी के, म्हारे एक छोरा भी व्हे'गयो हो, पण
तो यागी रान मे बिल्यो, वणी वगत म्हारी नणद जागती ही
मृ तो गी ही मो छोरो कूँकर व्हे' है, यो तो नणद ने पूछ्या
शे नदर पड़ेगा । जदी एक अनुभवी लुगाई बोली के बेटी और
ता मा ठाक है, पण नींद मे छोरा नी जणाय है, ने पूछ्या शू
ना, पण तणे जी ने हीज गवर पड़े है, दूजा ने नी, युंहीं जाण
मा ही जाणे है, के बटा शू उतगाय है, के नी', ने वा कणी
हालत है—

जाणे मा ही जाण मी, या अण जोणी जाण ।

नींदर अंधारी नाग मी, उगा अलग्व पिछाण ॥

अलग्वपच्चीमी

४—अणी अध्यात्मप्रसाद री ऋतभरा मे भी सम्कार कश्या नी योडा ही रे' है । सम्कार नी रे' जदी तो कई नी विह्यो, पण वी सम्कार मत्य (ऋतभरा) रा रे' है । अणी वास्ते अणों, ने वर्णा सम्कारों मे नरोई भेद है—पूरव पच्छिम रो भेद है । अणों शूँ सम्कार बीज मिटे, ने वर्णा पे'ली रा (अविद्या रा) शूँ सम्कार म्नि दूणां ने रात चौगणा व्हेता जाय अर्थात् एक बीज-पणों मिटावे, ने दूजो सामो बधावे, यो ही ऋतभरा, ने दूगरा सम्कारों मे भेद है, साँच भूठ रो फेर अणी योग ससार मे अतरा है ।

**मृ०—तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्वीजः
समाधिः ॥५१॥**

१—अणी री भी रोक व्हेवा शूँ पछे रोक री हीज रोक गह । अणी रो हीज नाम निर्वीज समाधि है ।

२—ने पछे वर्णा रा भी विचार रुक ने अखंड महासुख जे' जाय है । अणी ने ही निर्वीज समाधि, सर्ववृत्ति निरोध (सब तरगा रा ठेर जाणो) देखे, जी रो दीखे जी शूँ विलुप्त अलग ने जाणो, ने कैवल्य आदि अनेक नाम शूँ के' है । पछे क' पर १ बाकी नी रे' है ।

(५) प्र०—हे प्रभो ! जय इस प्रकार ऋतभरा के सत्कार के सामने दूसरे सत्कार परास्त हो जावें तब ही निर्वीज समाधि पाई जाती है क्या ?

उ० - हे विज्ञ ! एक दूसरे सत्कारों वा नामों निष्पन्न नी नही राता सब इस ऋतभरा वा सत्कार भी मित कर निर्वीज

३—सूत्रकार आज्ञा करे के सब ही संस्कार (अनुभवों) की रोक करवा वालो अनोखो कृतभरा रो अनुभव है। वणी अनुभव ने मँडो आगे दूसरा अनुभव आय ही नी शके। केवल एक लो कृतभरा रो अनुभव हीज कोड़ा, कई आवता, ने बिहया, ने व्हे' गिया, मा अनुभवों ने रोक दे' है। पण अणी वात शूँ या वात पड़े जा के दूसरा अनुभव ना संस्कार भी रे' जरूर है। क्यूके गिया धियाँ नो रोके कणी ने। अणी पे सूत्रकार आज्ञा करे, के तँ या गायवा रो अनुभव हे, अणी री भी रोक व्हे'जाय हे पण के कँडे गजाना पे चोर ने रोकना ने पे'रो लागे, पण चोर रो गम निगाण ही नी न्हे'वठे पे'रो कणी रो लागे, वठे ना गायवा गजाना है। जदी'ज श्रीकृष्ण भगवान कई शास्त्र नी रोंगे तेरा येन री वंशी गाजे है अणी वास्ते ही भगवान तब मर के—

प्रज्ञात में कियो, वो एक ही है, पण वणी मे रस्ता री कठिनता बताव, अणी मे तीव्र सवेग री मूढ ही प्राप्ति, ने ईश्वर प्रणिधान में सब शू शीघ्र प्राप्ति कूँकर ज्हे' है ज्या बताई है । जो कोई केव के अणी में भी छोटी दीखे तो वणी मे विचारणो चावे, के ईश्वर प्रणिधान एकतत्वाभ्यास शू वच्चे कई कई बातों आवे है वो बताई है, जो शू छोटी ज्हे' ज्यू दीखे है, पण कियो केवल एकतत्वाभ्यास हीज है, जो के हर हालत मे आयो, ईश्वर मे अर्पण ज्हे'तो रे'णो है, ने यो हो सुगम ने उत्तम शीघ्र प्राप्ति मे मार्ग है ।

४—ऋतभरा रा संस्कार भूठ ने तो फरकवा ही नो दे' । केवल ग्राच ही—असली ग्राच ने हीज लीर्या थर्का ज्हे', पण ग्राच मे संस्कार भी भूठ ने सावित करे है, वो ग्राच मे संस्कार भी निर्गन्ध ज्हे' जाय, ने सब वृत्ति निरोध नाम री निर्बीज समाधि ज्हे' जाय अर्थात् वणी योगी रा मन मे शू भूठ भी ज्हे' है, अणो संस्कार मिट जाणो ही निर्बीज समाधि बाजे है । लेण मात्र भी अन्यथा विचार री जड नी रे'णो ही निर्बीजता है । विचार नी रे'णा निर्बीजता नी है, पण अविद्या से लेश संस्कार नी रे'णो ही योग है ।

[दो योग शास्त्र से समाधि पाठ समाप्त हवे ।]

प्रथम पाद का उपसंहार

(खुलासा)

—*—

हे भगवान् ! दयानिधान ॥ आपने मुझ पर दया कर परमानन्द की प्राप्ति और सम्पूर्ण दुःखों की विलक्षण निवृत्ति के लिये (सूत्र १, २ में) योग शास्त्र समझाया कि सब वृत्तियों के रुकने से दृष्टा (सूत्र ३ में) (अपने नाश) अपने स्वरूप में स्थिर हो जाता है, यही योग है और फिर अपनी उन वृत्तियों के (सूत्र ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११ में) नाम और लक्षण कर उनके रुकने के लिये अभ्यास (सूत्र १२, १३ में), वैराग्य के लक्षण और फिर दोनों (अभ्यास समाप्त) की (सूत्र १४, १५, १६ में) अवधि कह कर इन से होने वाली प्राप्त संप्रज्ञात समाधि के (सूत्र १७ में) चार भेद कहे । फिर पूर्ण अभ्यास वैराग्य में होने वाली (सूत्र १८ में) समाधि समाधि कह कर इस असंप्रज्ञात को न पाकर तीन भाग में होने वाली का (सूत्र १९ में) फिर जन्म होना कह कर फिर से न होने वाला के (सूत्र २०, २१ में) श्रद्धादि साधन और उन साधन (सूत्र २२, २३, २४, २५ में) मन्द, मध्य तीव्र शक्ति के अनुसार मयःकृष्ट जीव प्राप्ति का साधन (सूत्र २६ में) के चार वर्ग करने की कथा । इसमें ईश्वर के स्वरूप और (सूत्र २७, २८ में) ईश्वर स्वरूप का कह कर उस में होने वाले फल विद्वानों की (सूत्र २९ में) वन्दना । फिर विद्वानों के बड़े लगे साधन

दुःखादि की (सूत्र-३० में) निवृत्ति के लिये एकाग्रता का अभ्यास करना कहा । फिर (सूत्र ३१, ३२ में) उस एकाग्रता के लिये सात उपाय बताकर (सूत्र-३३ से ३९ तक में) स्थिर चित्त का लक्षण और उसके भेद कहे । फिर (सूत्र-४०, ४१, ४२, ४३ में) सप्रज्ञात के सवितर्कादि चारों विभागों का कथन किया और इन चारों से (सूत्र-४४ में) सूक्ष्म भव प्रत्यय को भी बीज सहित होने में गबीज (सूत्र-४५, ४६ में बाहर की वस्तु को लिये हुए) कही । फिर निर्बीज को कहने के लिये (सूत्र-४७, ४८, ४९ में) निर्मल निर्विचार से अध्यात्म प्रसाद (अन्तरीय अनुभव) कहा और उस में प्राप्त होने वाली ऋतभरा बुद्धि (सूत्र ५० में) कह उस ऋतभरा में सम्पूर्ण सस्कारों (विचारों) का अत्यन्त लय कह कर चक्षु के स्वरूपावस्थान रूप निर्बीज (सूत्र-५१ में) समाधि बताई । इसका तात्पर्य मेरी समझ में यह आया कि चक्षु का स्वरूप में अवस्थान (वृत्तियों में प्रथक्ता जो कि वृत्तियों का चक्षु हीन से स्वाभाविक ही है) ही मग्न वृत्तियों का निरोध है और वा निरोध किस प्रकार होता है उसका अधिकारी भेद में ही आपने यह सब विवरण किया है॥



पातञ्जल दर्शन

द्वितीय साधन पाद

सू०—तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि
क्रियायोगः ॥१॥

१—तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान, अर्णों ने क्रियायोग के' है ।

२—ईश्वर रे वास्ते खमणो, वणी रो विचार करता रे'णो, ने वणी रो आशरो लेणो, ई काम महासुख पावा रे वास्ते कीदा जाय है । याँ तीर्णों ने ही तप, स्वाध्याय, ने ईश्वर प्रणिधान भी के' है । याँ रो भेलो ही नाम क्रियायोग है ।

३—अवे सूत्रकार जी पे'ला समाधि पाद मे कि'या थका

५ प्र० — हे गुरो ! आपने अब तक जो योग की समझाइश की वह ऊँचे अधिकारी स्थिरचित्त वाले ही के उपयोगी है । क्योंकि उसमें मन साधन मन ही पर निर्भर हैं । परन्तु जिसका मन इस योग्य नहीं होने पर भी जो जिज्ञासु गुरुवाच्य पर विश्वास

उपायों ने नी समझ शके, अथवा नी कर शके, वणों पे कृपा कर यो दूसरो साधन पाद आरम्भ करे हैं—जो से'ज मे ही प्राप्त करे' शके—वो उपाय पे'लाँ ही के' दियो, पण ज्यू चडकली (चिडिया) पाँखड़ा ऊगवा पे बच्चा ने उडणो शिखावे है, जदी पे'ली ऊपरली ढाळी पर बैठ ने बोले । पण जदी अतरी शक्ति दया री नी दीखे तो पाछी वणी रे नजी'क री ढाळी पे आय जावे हैं । यूँ ही कमजोर योग रा अभिलाषियों रे वास्ते ठेठ गू पाछो योग रा वर्णन रो यो दूसरो पाद है । अठे यो भाव हैं, क समाधि पाद रा अभिलाषी तो विरला ही पुरुष हैं । बाकी सब ही अणी पाद रा अधिकारी हैं । जतग मत धर्मा में उपाय बताया गया है, वी सब ई'ज हैं वा अणाँ रा रूपान्तर हैं अर्थात् ई दूसरा पाद ने मनुष्यमात्र रा धर्म हीज समझाणां चावे । जा अणी पे नी चाले वो मनख ही नी हैं । जणी मे अणाँ ग्राधर्मा री जतरी कर्मा हैं, वणी मे वतरी ही मनखपणाँ री कर्मा हैं । अणी वास्ते मनख मात्र ने चावे के वो अणाँ पे चाले । मनख जन्म लीधो, ने वो अणाँ धर्मा रे अधिकारी बनेगयां । जा पा नी चाले तो राजस वा पशु हैं । तप—के' हैं—सहन करवाने । स्वाध्याय के' हैं—मोक्ष री विधि रा शास्त्र ने । ईश्वर प्रणिधान व है—घमट नी' करवाने । मार अणी री यो निर्या व मोक्ष

सब घर गुरु के बहने अनुसार करने को तैयार । उसके लिये परम आनन्द पाने का क्या उपाय है ।

उत्तर—हैं वत्स, ऐसे अधिकारी को द्विधा योग करना चाहिये । तप (सहन करना) स्वाध्याय (प्रणव आदि का जपना) और (सब शास्त्र का मनन) और ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर के लक्ष्य में)

री विधि रो शास्त्रानुसार सहन करणो, घमड नी करणो । अर्णा तपाँ रो वर्णन गीताजी मे आवे हीज है, के तीन तरे' रा तप है, ने फेर वर्णाँ रा तीन प्रकार है, ने 'करणो' शास्त्र के' वे सो, ने 'ॐ तन् सत् यो क्लो नाम' ने 'म्हारे ही आशरे कर्म शयला ही करतो थको ।' आज कल तप, दुःख देवा ने हीज समझ लीधो है । स्वाध्याय, माळा रा मण्या गुड़कावणो नाम राख्यो है, के'क एक आध पाठ मूडा शूँ कर लेणो, ने ईश्वर प्रणिधान रो यो भाव समझ लीधो है, के 'राम करे ज्यो व्हे' है, यूँ कर हाथ पे हाथ मेल वेठा रेणो । सूत्रकार रो जो अभिप्राय है, वो गीताजी रा श्लोक शूँ स्पष्ट व्हे' है । श्री भगवान् पतजलि हस री नाँई है, जो पक्षियाँ में भी उत्तम समझयो जाय है, ने आकाशगाभी व्हेवा पे भी पृथ्वी पे चालवा लागे, तो भी वर्णाँ री चाल री प्रशंसा व्हे' । पाणी मे नी भीजे और तरतो भी रुपाळो लागे, ने चमकी लगाय ने मोती निकाळ लावे, ने दूध पाणी ने न्यारा तो एक यो हीज पत्तो कर शके है । यूँ ही साधन योग भी कह्यो, तो वो भी सर्वाँ रो शिरोमणी'ज है, ने समाधि विभूति कैवल्य री महिमा भी अणी'ज माफिक है, ने जड चेतन रा विवेक में तो एक ही है । पूर्व जन्म रा सुकृताँ शूँ कणी'क ने हीज समाधि पाद रो अधिकार मिले है । दूज्यूँ साधन पाद तो

अर्पण करना अर्थात् ईश्वर निमित्त काम रना) को क्रिया योग कहते हैं ।

नोट—सहन करना (तप) और शास्त्र की आज्ञानुसार सहन करना (स्वाध्याय) और उसका भी अभिमान न करना (ईश्वर प्रणिधान)

नारा ही मनुष्यमात्र रे वास्ते है, ने तीव्र वेग शूँ साधन करवा
वाला रे समाधि छेटी नी है। कतराई के'वे, अश्रयो उपाय स्पष्ट
व्हे' जणी ने म्हे कर शर्का, ने खाली भी नी जाय, वणरि वास्ते
ही'यो साधनपाद आरम्भ व्हे' है। यो हरे'क कर शके है, नै अणी
माफिक साधन करवा शूँ अवश्य समाधि सिद्ध व्हे', ने कोई
गमरो भी नी है। अणी'ज साधन योग री गीताजी मे जगा'
जगा' प्रश्नोत्तर शूँ प्रज्ञसा कीधी है, ने आपणे भी के' है, के
'साध्या सिद्ध, ने साध्याँ रिद्ध' व्हे' है। ईश्वर रे वास्ते
गमणो, ईश्वर रो विचार करणो, परमेश्वर रो आशरो लेणो,
ई वाम अखड महासुख रे वास्ते है।

४—जणाँ रो मन सूधो है, स्वाभाविक ही शान्ति ने पसंद
करवावालो है, वणाँ रे तो समाधिपाद में वश्या ही मूधा साध्या
उपाय बताय, सहज निर्वाज-जो असली योग है वो-गमभाय
कीधी है। पण चंचल चित्त व्हे' वणी रे कई उपाय करणो ?
वणी पे यो दूसरो अध्याय चाले है। अणी रो नाम क्रियायोग
य साधनपाद है। पोलो तो अश्या ने खमवा रो सा'दरो वरणो
चाय, जदी'ज आगला स्वभाव छूट, नवा पट गके है, अणी रा
ही नाम तप है। दज्यूँ दांडे ज्यूँ ही विषयो मे 'विना रोक टोक
नोटव शूँ वदी ठे'राय ? पण खमती वगत भी मन गूँ, शरीर
पूँ गमती मुँवावतो मुँवावतो खमावणो प्रसन्नता पूँ ईश्वर रो
आरो गवणो, ने वणी रो नाम वा यश स्मरण करता रे'णो।

करता है। इस प्रकार तीनों एव ही क्रियायोग के नाम से बताई है।

“तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो दिगिप्यते ॥”

(गीता कर्म योग 'यही क्रिया योग)

सू०—समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥२॥

१—यो क्रियायोग समाधि प्राप्त करवाने, ने कलेशां ने नवळा करवा रे वास्ते है ।

२—अणाँ ने करताँ करताँ पाँच ही दुःख नवळा व्हे'ने मन महासुख रे लायक व्हे' जाय है ।

३—अर्थात् क्रियायोग जो कियो के तप, स्वाध्याय, ने ईश्वरप्रणिधान, अणी शूँ कई फायदो है, तो वीं पे सूत्रकार आझा करे, के अणी शूँ समाधि रे लायक मन व्हे' जाय, ने पाँच ही कलेश नवळा पड़ जाय है । अणाँ पाँचाँ रा ही नाम, ने लक्षण आगे आवे है । ई कलेश, यूँ वाजे के अणाँ शूँ अवकाई पडे है । अणाँ शूँ महासुख रे लायक विचार (मन) व्हेवे, ने दुःख नवळा (ओछा) पडे है । कोइ के'वे, के जदी पे'ली रा अध्याय में समाधि री सब बात । आयोगी, फेर अणी क्रियायोग री कई आवश्यकता है ? जणी पे के'वे, ई शूँ कलेश नवळा पड़ ने समाधि री योग्यता आवे है अर्थात् यो पे,ला पाद रो साधन है, ई शूँ ही अणी रो नाम साधन अध्याय है ।

(५) प्र० हे भगवन् ! क्या इस क्रियायोग से भी सम्पूर्ण दुःख सदा के लिये मिट कर परम-आनन्द मिल जाता है ।

उ० क्रियायोग से क्लेश कमजोर (तनू) हो जाते हैं और समाधि की योग्यता हो जाती है । समाधि ही सब दुःख की नाशक और सुख का मूल है । यह पहले मुझे कहा ही है अर्थात् इस क्रम से समाधि की प्राप्ति होती है ।

४—अणी क्रिया योग शूँ पे'ली तो सहज करणो, ने पछे वो भी ईश्वर रो जप, ने वणी रा हुक्म माफिक प्रसन्नता शूँ, सहजो ने पछे वो भी ईश्वर रे आधीन व्हे'ने वणी रे हीज अर्पण कर टणो । अणी शूँ समाधि रो भावना सहज में ही व्हे' जाय, ने कलेश आपो आप ही नवळा पड जाय । अणी विना यो काम व्हे नी शके, ने क्यूँके कलेश तेज व्हे' जतरे समाधि रो भावना नी द' शकें, ने समाधि रो भावना विना कलेश ढीला नी पडे । अणी रास्ते क्रियायोग शूँ दोई काम साथे ही व्हे'ता र', जणी शूँ योगी सहज में ही नवळा कलेशों ने समाधि रो भावना करतो थको भिटाय ने आप सहजस्वरूप ने सहज में पाय लें' हैं ।



सू०—अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च
क्लेशाः ॥३॥

१—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष ने अभिनिवेश । ई पाँच ही कलेशों का नाम हैं ।

२—मूर्खता, मूँपणो, सोह, ग्यार ने भय नव दुःखों का मूल । ई पाँच हीज दुःख हैं । अणी रो हीज नाम अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, ने अभिनिवेश हैं । ई हीज पाँच कलेश भी बाजे हैं ।

(१) प्र० है अगणन । ये कलेश बान से हैं, जो क्रिया योग द्वारा तब (बमजोर) दिये जाते हैं । जिनके क्षण होने से समाधि की योग्यता ना जाती है ।

३—अवे अविद्या कणी ने के'वे है, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश कणी ने के'वे है, सो आगे घतावे है। कोई के'वे, कलेश तो ससार मे हजारों तरे' रा है, वणी पे सूत्रकार आज्ञा करे, के नराई नी है, केवल पाँच हीज है। ई मिटवा शूँ सब मिट जायगा। सब कलेशों री जड़ ई पाँच हीज कलेश है और तो अणोंरा ढाळी पानड़ा है। मूर्खता, म्हूँपणो, मोह, खार, ने भय ई पाँच हीज दुःख है। अठे या बात पैदा व्हे' है, के साधन करवा शूँ. कलेश नवळा पड़े है। ई मिटवा शूँ सब कलेश मिट जाय ने ई व्हेवा शूँ सब कलेश व्हे' जाय है। ज्यूँ—ज्वर में उताप अरुचि, डीलदूखणो, बेचैनी, आदि व्हे' है, ने वणी रे मिटवा शूँ सब मिट जाय है। यूँ ही अणों पाँचों शूँ ही और सब कलेश है, ने ई मिटया ने सब मिट जाय है।

४—वणों पाँच ही कलेशों रा ई नाम है—अविद्या (अज्ञान), अहंकार, राग, द्वेष, ने आसक्ति। ई और कई नी है, जो पे'लो पाँच वृत्तियाँ की', जणों मे'ली विपर्यय वृत्ति रा हीज भेद है। पण आखा ही संसार रो— —घर यो हीज है। अणी'ज में उळ्ळवा शूँ मनख अनर्थ शूँ अनर्थ में उळ्ळ ने महा भूठ री जाळ में पड ने तड़फड़वा लागजाय है। गुण गाढा पडता जाय, गांठाँ पे गांठाँ घोळावती जाय। भाव यो के अणों पाँचों शूँ कलेश

उ० अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, ये पाँचों ही कलेश होते हैं। मुख्य ये ही पाँच कलेश हैं, बाकी सब दुःख इन्हीं के भेद हैं।

मुगतणा पडे है। या हीज भूल ने दूजा दूजा क्लेशों में दूजो दूजो
उपाय करतो फिरे जनी'ज वो विपर्यय है।

—० ❀ ०—

सू०—अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नो- दागणाम् ॥४॥

१—नव दु खों रो मूळ मूर्खता है। पछे भलेई, वी दु ग्व दीग्यो
वा मती दीग्यो वा दीखो मिटो वा नवळा दीग्यो।

२—दीग्यो, नी दीखणो, दीग्यो नी दीग्यो ने नवळा
दीग्यो, ई आर्णा रा चार चार भेद है। अर्णा ने हीज उतर
प्रसुप्त, विच्छिन्न, ने तनु भी के' है। अर्णा नव दुर्गा रो मूळ
मूर्खता हीज है।

३—अवे अठे या वात आवे, के ज्यूँ नव होणा रा मूल ई
पाँच हीज क्लेश है, यूँ अर्णा पाचों में ती मुख्य क्लेश वगैरे हैं।

प्र०—इन पाँचों में भी मुख्य क्लेश विसको समझना चाहिये ?

उ०—अविद्या ही सब क्लेशों (दु खों) का मुख्य कारण है। ऐ वन्न ।
कभी ये क्लेश टिपे परे रहते हैं—जो समय पावर ही मानस होने
है। इनके प्रसुप्त (सोते हुए) क्लेश कहते हैं। कभी ये वन्नोर
गालत में दीखते हैं, वे तद् (निर्दल) परे जाते हैं। कभी इनके
से एक दृष्टता और दूसरा उठता है और दूसरा दृष्ट कर दिन उत
रत खरा होता है। इस उठने गिरने की क्लेशों की लक्षण व

के जगी एक रे मिटावा शूँ बाकी रा चार ही मिट जाय । जणी पे के' वे है, के एक अविद्या ही सब क्लेशों रो मूल है । अणी रे मिटावा शूँ सब क्लेश मिट जायगा । अणी पे या वात आवे, के हरे'क क्लेश व्हे'ती वगत दूसरा क्लेश तो नी दीखे, ज्यूँ, राग री वगत मोह कठे परो जाय, ने राग री वगत क्रोध कठे रे' है—जो राग री वगत द्वेष नी व्हे' तो पाछो द्वेष री वगत कठा शूँ आय जाय है, ने राग री वगत द्वेष रे'वे, तो दीखे क्यूँ नी है । क्यूँके वो ही रीश करतो थको साथे ही प्रेम करतो' नी दीखे, ने यूँ ही प्रेम रे साथे ही रीश करतो भी कोई नजर नो आवे । जदो एक क्लेश नजर आवे वणी वगत बाकी रा क्लेशों री कई हालत व्हे'है । क्यूँके म्हाँणे क्लेशा ने मिटावणा है, ने सब क्लेशों रा मूल ई पाँच हीज है । अणाँ में भी एक अविद्या ही सर्वाँ रो मूल है । जदी या विलकुल मिटजावा री म्हाँने निश्चय कूँकर व्हे' । क्यूँके बे'वार मे देखीं तो भी आज अणाँ साधनाँ रे घटाजावा शूँ मनखाँ मे अतरी फूटारोल मचगी'है । जठी देखो वठी मनखाँ रा जीव ठिकाने नी है । कोई कड उपाय सुख रो विचारे, कोई कठीने ही

विच्छिन्न (अस्तव्यस्त) कहते हैं और जब एक ही क्लेश प्रबल होकर अन्य सब दब जाते हैं तो क्लेशों की इस दशा को उदार (प्रबल) दशा कहते हैं । अब चाहे सो क्लेश इन (प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न, उदार) चारों हालतों में से चाहे, जिस हालत में हो परन्तु अविद्या ही उनका कारण (मूल) समझना चाहिये, अर्थात् सब हालतों में सब क्लेशों का कारण अविद्या ही है ।

(नोट) बालक में प्रसुप्त, साधक में तनु (सूक्ष्म), राग द्वेषवान में राग के समय द्वेष विच्छिन्न और द्वेष के समय राग विच्छिन्न

अबल दौडावे, पण सूधी बात है। अणी क्रिया योग ने मनर माँचा मन शूँ नी पकडेगा, जतरे कदी भी सुख गान्ति नी व्यापेगा। चावे जतरा कानून, ने चावे जतरा नाचा कूदा करो। ज्यूँक जणी रे वे'वारो ज्यो गेलो है, वणी'ज गेले चालवा शूँ वो गाम आवे है। आथमणी कानी चाले, ने उगमणी कानी रा गाम मे जावा रो इरादो करे, तो कृकर पार पडे। आज भी थोडो घणोमुख दीखे सो भी अणी योग रो हीज अग है, यूँ गमक लणो चावे अणी बात न योग रा अर्गाँ ने समझाया बटे समझावा न विचार है जणी शूँ अठे नी फेलाई।

(या टीका अठा तक हीज मिली है)

४—अण। पाच क्लेशाँ मे भी मुख्य अविद्या ने हीज समझणी। बाकी चार तो अणी रा हीज पेटा मे है। अविद्या चार प्रकार की रहती है, ने वणी रा भी एक एक रा चार चार भेद बिया है। एम, कतरी ही दाण ई क्लेश सृता रहे पण जदी घोर कारण न तो रखर पडे, के देखो अतरा थोटाळ फटे भर-यो लो। य ए तल हलत मे रहे'जदी नवळा रहे, ने विनिच्छन्न रहे जणी वगत रहता जाय, ने बधता जाय, उदार रहे'जदी चोर एव लो।

होता है और उदार रह ए जो अपनी हालत से से ऊँह अन्य से न दवे जैसे द्वेषी का द्वेष राग से न ददे। ये चार क्लेशों की हालत ए अविद्या से निवृत्ति होने पर इनका दोज नष्ट हो जाता है धरन ये कभी सुख, कभी उदार, कभी तन, विच्छिन्न होते ही रहते है।

“अज्ञानेना वृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः।”

हीज जोरदार बण्यो रे'वे । एक दग्ध क्लेशावस्था है । जणी मे चावे जो ही हालताँ व्हो' असली बात नी छूटे वा महात्मा री व्हे' है वठे विपर्यय है ।

—०ॐॐ०—

सू०—अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्य- शुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥५॥

१—मिटे जीं ने अमिट जाणणो, शूगला ने पवित्र समझणो, दुःख ने सुख समझणो, आपाँ ने और जाणणो, यूँ उँधी समझ रो हीज नाम मूर्खता बाजे है ।

(या टीका अतरी हीज मिली है)

२—मिटे जीं ने अमिट जाणणो, शूगला ने पवित्र मानणो,

(७) प्र० हे प्रभो ! सम्पूर्ण क्लेशों में व्यापक मुख्य कारण अविद्या ही है, तो विद्या किसे कहते हैं यह कहिये ?

उ० हे सौम्य ! यह विपर्यय वृत्ति (बलदीवृद्धि) ही अविद्या कही जाती है । अनित्य (नाशमान्) को नित्य (अविनाशी) समझना, अशुचि (अपवित्र) को शुचि (पवित्र) समझना, दुःख को सुख समझना और अनात्म (अपने से इतर) का आत्म (आप) समझना यही अविद्या है और यही सब दुःखों का (क्लेशों का) कारण है ।

नोट—गिर्य, शरीर, कामना, अहंता, ही क्रम से अनित्य अशुचि, दुःख, अनात्मा है ।

दुःख ने सुख समझणो ने आपाँ ने और गणणो ही मूर्खता बाजे है। अणी ने हीज अविद्या के' है। सब तरे' रा दुःख रो मळ ग होज है।

४—अनित्य ने नित्य गणे, अपवित्र पवित्र माने, दुःख ने सुख समझे, अनात्मा ने आत्मादेखे, जणी समझ शूँ, अणी विपरीत निपरीत रो समझ रो ही नाम अविद्या है। अर्थान् ऊँधी बुद्धि ने अविद्या के' है। अणी चास्ते या माँची शूँ ऊँधी है, माँची समझ अविद्या नी, समझ रो नी व्हे'णो अविद्या नी, समझ व्हे'णो अविद्या नी पण माँची समझ रो ऊँधी समझ रो नाम अविद्या है। ये अविद्या ने ओळखी ने विद्या आई ने विद्या आई ने नद जियो।

सू०—दृग्दर्शनशक्त्यो रेकात्मतेवाऽस्मिता ॥६॥

२—देखे जो ने देखे जणी रो एक व्हे' ज्ये व्हे'णो ही संपणो है। अणी ने हीज अस्मिता के' है।

(५) प्र०—हे भगवन् ! सगूर्ण वृक्षों का व्यापक कारण जो अविद्या है, उसे मैंने समझ लिया अब वृषाकर आप ने दूसरा जो हैरा “अस्मिता” कहा था, वह भी समझा दीजिये ?

उ०—दृग्दर्शन (देखने का स्वभाव) दर्शन शक्ति (दीखने का स्वभाव) अर्थात् देखने वाला और दीखने वाला इत्यादि एक तो हो ही नहीं सकते। परन्तु हमको एव ही समझना ही अस्मिता (अज्ञाता) है।

४—एक देखवा री शक्ति है, ने एक दीखवा री शक्ति है। देखवा री शक्ति कदी भी दीखवारी शक्ति नी व्हे' शके। क्यूँके वणी मे तो दीखवा री शक्ति ही नी है। अगव्हे'ती कूँकर व्हे'। यूँ ही दीखवा री शक्ति भी देखवारी व्हे'ई नी शके। पण ऊँधी समझ शूँ अणाँ ने ऊँधी कर ने मानले', व्हे' नी तो ई यूँ हीज दोयाँ ने ही शेळ भेळ करने अणी पे विचार ही नी करे, अणी रो ही नाम अस्मिता म्हुँपणो नाम रो क्लेश है। अणी ने जो न्यारो न्यारो कर शके, तो केवल ब्हियो ब्हियो त्यार है। पण विचार ही नी करणो, ने ऊँधी समझ नी छोडणी ही हाथाँ शूँ भाटा उझाळ ने करम पे पटकणा है।

सू०—सुखाऽनुशयी रागः ॥७॥

२—मुख रे वास्ते विचार करणो ही मोह है। अणी ने राग भी के'वे है।

४—सुख ने याद करने वणी री तृण्णा वधावणो ही राग नाम रो क्लेश वाजे है। अणी मे भी अविद्या रे'वे है, जदी कुत्ता

(०) प्र०—आपने जो अविद्या आदि पाच क्लेशों के नाम कहे, उनमें तीसरा क्लेश राग कहा था, कृपा कर अत्र राग किसे कहते हैं सो भी समझा दीजिये ?

उ०—सुख का काम राग कहना है अर्थात् सुख के वास्ते जो विधागादि हैं, वे राग हैं।

री नाई विषयाँ में सुख समझ ने मन भटके । दूज्युँ, तो विद्या-
वर्णताँ कई देर लागे । असली सुख ने समझ ले' जठा केडे फेर
कई रियो । पण अमली शू अँवळा नी जचे जतरे अविद्या ही कई
व्ही' अणी वास्ते चारला सुखाँ मे ही मुख्य मानणो राग नाम
ग लेज वाजे है । चीतराग रा मन री स्मृति भी अणी में घणी
मद कर माँची री कानी ले'जाय है ।

सू०—दुःखाऽनुशयी द्वेषः ॥८॥

२—दुःख रे मिटावा रो विचार ही खार है, यो हीज द्वेष
वाजे है ।

४—यूँ ही दुःख ने याद करने घणी शू खार करणो द्वेष वाज
है । यो भी अविद्या रो ही कारण है दूज्युँ गेलेचालताँ दुःख ग
खार स्युँ करों । पे'ली तो विचारणो के दुःख कई व्हे' है क्युँ —
है ने मिटे के नी', ने मिटे तो कणी नू'मिटे, य विचार जणे ना
अविद्या र वे ही कटे । पण यूँ ही विचारे तो भी मनमन ही
जयी हीज विचारे । पण चतुर्व्यह योंगशास्त्र रे अनुसार नी
विचार, ने माँच तो एक हीज व्हे' है ने वा माँच विद्या यागिनी
ने हीज मृभी है । दूसरा तो ग्राडा मे शू खार मे पण्डा जाय,
ने योग र गेले नी लागे अयली समझ नी छोडे ।

(५) प्र०—द्वेष जो चौथा हेश है, उसका क्या लक्षण है ?

२०—दुःख वा काम द्वेष कहाता है अर्थात् दुःख वे वस्तु जो उन्मदी
निवृत्ति के विचारादि कार्य है ये द्वेष दो जाते हैं

सू०—स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभि- निवेशः ॥६॥

२—समझणों में भी चमक रे'जाय, यो ही भय वाजे है।
अणी ने अभिनिवेश वा मृत्युभय के' है।

४—आपणी'ज धुन मे व्हेवावाळो, ने सवाँ मे ही एक सरीसो
जो एक धुन रो वण्यो रे'णो, अभिनिवेश नाम रो क्लेश वाजे
है। क्लेशों री नीम अविद्या है, तो अभिनिवेश वणी रो कळण
है। अणी मे बडा बडा ने ही यो विचार आय जाय, के म्हुँ मर
जाऊंगा, ने वण्यो ही कीड़ी कुजर ने भी मरवा शूँ डरलागे।
समझसोच ने देखे तो हाल कोई मरवो भुगत्यो व्हे' जश्यो जीव
नीदीखे। क्युँके मरणो, ने जीवणो एक जन्म मे व्हे'ई नी शके,
ने पे'ली री जो याद नी, पण अणी अभिनिवेश शूँ जणाय, के
पे'ली रा सस्कार शूँ ही यो व्हे' है।

५ प्र—पाँचवाँ क्लेश जो आप ने अभिनिवेश कहा था, कृपया उसका भी
लक्षण आज्ञा कीजिये ?

उ०—सब जीवों मे चाहे वह अज्ञानी कीट हो, चाहे समझदार मनुष्य
ही हो, जन्म से ही जो भय है, वह ही अर्थात् भय
ही अभिनिवेश कहा जाता है। यह अज्ञानी कीट में भी होता है
और जो समझदार मनुष्य है, जिन्होंने यह निश्चय कर रक्खा
है, कि जन्म लेगा वह अश्रय ही मरेगा उनमें भी मृत्यु भय
होता है अर्थात् वे भी यही चाहते हैं कि हम नहीं मरे और
अज्ञानी भी यही चाहता है। यही मृत्युभय अभिनिवेश नाम का
पाँचवाँ क्लेश है।

सू०—ते प्रतिप्रसव हेयाः सूक्ष्माः ॥१०॥

२—अणाँ पाँच ही नबळा व्हिया थका दुखीं ने सोंची समझ शूँ मिटाय देणा चावे ।

४—अणाँ क्लेशाँ ने मिटावारो उपाय यो हे, के पे'ली तो अणाँ ने क्रिया योग शूँ नबळा कर देणा, पछे अणाँ री शक्ति चीण बवा शूँ न्होटा, ने छोटा में (चारीक में) अभिनिवेश ने द्वेप में न द्वेप ने राग में, मिलावता जाणो । यृ ही अविद्या मय मय क्रिया ने बिना बीज रा व्हिया थका देववा मात्र रा र जायना, पछे पाछा भूगा नी फूट शके । क्यूँके असलियत समझायगी । असलियत समझ लेणाँ ही विद्या है, ने योग री भूमिका र आरिगी या हो है । अणी में बिलकुल कबाई नी रे'णी चावे । तूँ एक में शूँ अनेक अनर्थ पाछा प्रगट व्हे जाय गो पाछा समझ देणा ।

५ प्र०—जब क्रिया योग से ही इश बसजोर होजाते हैं, तो फिर निर्बीज समाधि तब की दृष्टि की क्या आवश्यकता है ?

उ०—इनका बिलकुल नाश निर्बीज समाधि बिना नहीं होता । इससे सूक्ष्म इश भी पीछे उठ जाते हैं इसलिये निर्बीज समाधि में इनका बिलकुल नाश कर देना चाहिये ।

ग०—यागसन्त्यजनकर्मणि ज्ञानसत्त्वसशयम् ।
आत्मपन्न न वर्माणि निदानानि धनञ्जय ॥१॥

(गीताजी)

सू०—ध्यायानहेयास्तद्वृत्तयः ॥११॥

२—पे'ली जोरावर दु'खाँ ने महासुख रा काम (क्रियायोग) शूँ नवळ्ळा करदेणा चावे ।

४—अणाँ री वृत्तियाँ ने ध्यान कर, ने मिटावणी चावे । ध्यान शूँ विचार, विद्या सहित एकाग्रता शूँ है । अर्गी'ज ने प्रसस्यान भी के' है । जदी यूँ ध्यान शूँ ही वृत्तियाँ नवळी पडजाय, जदी प्रति प्रसव शूँ समेटवा शूँ बीजभाव नष्ट व्हे'ने अविद्या नष्ट व्हे'जाय । वृत्तियाँ ने ध्यान शूँ कमजोर कर देणो तो सूधो है, पण कमजोर कर विलकुल मे'ल मिटाय देणो, (बीज मिटाय देणो) अविद्या गो संस्कार हीज नष्ट कर देणो मुशकिल है, ने यो नो विहयो जतरे पाछो सब अनर्थ व्हेवा गो, कदी-न-कदी ।

(१) प्र०— हे भगवन् जब निर्बीज समाधि से ही इन क्लेशों का बिलकुल नाश होता है, तो फिर निर्बीज समाधि का ही अनुष्ठान करना चाहिये । इस क्रियायोग की फिर क्या आवश्यकता है ?

उ०— हे सौम्य ! इनकी स्मृलता ध्यान से मिटानो चाहिये अर्थात् क्रियायोग से । क्लेशों को कमजोर कर ध्यान से सूक्ष्म कर फिर समाधि द्वारा निर्बीज कर देना चाहिये । हे सौम्य ! क्रियायोग बिना समाधि की योग्यता चित्त में नहीं आती । इसलिये क्रिया योग से ही क्लेशों को कमजोर कर फिर क्रम से निर्बीज समाधि में विलकुल नाश कर देना उचित है ।

सू०—क्लेशमूलः कर्माश्रयो दृष्टादृष्टजन्मवेद-
नीयः ॥१२॥

२—ई दु ख रे' जावा शूही अठारा, ने बठारा कर्म भेळा व्हे'ह ।

४—अविद्या आदि क्लेश रे जाय, तो कर्मा गो वासना भी
जाय । क्यूँके अविद्या हीज सब अनर्थ गो बीज हैं, ने अणीरा
अस्मितादि ने प्रमुखादि अनेक भेद हैं । अणी वासने क्रियां ऊ
अविद्या गो तो नाम निगाग हीज नी राखणां ने अविद्या ने
नाणी, ने विद्या वही' । क्यूँके दोई तो मायें रे' ही नी गवें । पण
जाणणी ही नी, ने मूखी-वात है, जदी तो मनख-शरीर गो लाभ
॥ रुड विहयो, अणी ने नी जाणवा श वासना रेंवे, ने वा अणी
जन्म मे वा दूसरा जन्म मे भोगणी हीज पटे । क्यूँ के चीनरा
सगा आज फटो वा काल पण पृट-यो बिना तो नी जर वें । अणी
ने अविद्या जाणणा ।

२०—ह दयालो ! इनको निर्दीज (विलुप्त नाश) न करे तो क्या हानि
ह । कमजोर वृद्ध तो दु ख देते ही नहीं ।

२१—ह सोच्य । चाहें जिस हालत में रहे ता भी वरों के स चय वा
कारण वृद्ध हें ही और वरों वा स चय (सम्रा) होगा तो रहे
इस जन्म में वा अन्य जन्म में अनुभव करना ही पड़ेगा ।

सू०—सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ॥१३॥

२—कर्म व्हे' जशी ही जूण, ऊमर, ने भोग मिले है ।

४—अविद्या चावे जणी दशा मे रे'वेगा, तो भी वणी रो फळ, जाति, आयु, ने भोग व्हियाँ विना नी रे'वे । एक नामीक अविद्या विपरीत विचार, ने नी ओळखवा शूँ यूँ तरे' तरे' री जाताँ, आयुष, ने भोग भोगणा पडे । अगी वास्ते जणी वात रो सूधी वात रो, प्रत्यक्ष वात रो, आप्ताँ (वडा आदमी) री वात रो सहज ज्ञान प्राप्त कर लेणो, के जो वास्तव मे है हीज, ने सदा रे वास्ते जगी शूँ सव दु खाँ शूँ छूटकारो व्हे' अश्यो क्यूनो व्हेणो चावे । यूँ तो या तो व्ही' व्हेवाई है हीज यो भाव है ।

(५) प्र०—हे भगवन् । सञ्चय किये हुये कर्म इस जन्म में या पर जन्म में किस प्रकार भोगे जाते हैं ।

उ०—जाति (शरीर) आयु (उम्र) और भोग (विषय भोग) को कहते हैं—अर्थात् कर्मों का मूल हेतु विद्यमान होने से कर्म ब्रूट्टे होते रहते हैं और वे जाति आयु भोग रूप से प्रकट होते हैं ।

मू०—ते हादपरितापफलाः पुण्यापुण्य हेतु-
त्वात् ॥१४॥

२—आद्या कर्मां शूँ ई तीन ही सुख रा मिले, ने ग्वोटा शूँ ई'ज दुःख रा मिले है ।

४—वी जाति, आयु ने भोग के'क तो सुख रा व्हे' ने के'क दुःख रा व्हे' । ई तीन ही पुण्य रा कारण शूँ व्हे'तो सुख देवा-वाळा व्हे'जाय, ने पाप रा कारण शूँ व्हे'तो ई'ज दुःख रा कारण व्हे'जाय अर्थात् पुण्य शूँ सुख, सुख री जाति आयु, ने भोग मिले । ने पाप शूँ दुःख री जाति, आयु ने भोग मिले । अर्थात् में रेट री घेडाँ ज्यूँ सुख शूँ दुःख, ने दुःख शूँ सुख फित्ता ही रे'वे है । यूँ जतरे अविद्या रो मूळ रे' वतरे या लम्पटेर ती मिटे । क्लेश व्हे'जतरे कर्माशय (वासना) व्हे', वागना व्हे'तां भाग व्हे', भोग व्हे' तो सुख दुःख हीज पुण्य पाप शूँ जे'ता र' । यूँ गांवळ री कडी (री नाई बव्या थवा ई)

(या टीका अठा तक होज मिलो है । वयूँ के विमारी से लिग्याः री)

५ प्र०—हे प्रभो । वे जाति, आयु और भोग सुखदाई होते हैं वा दुःखदाई ।

६—वे जाति आयु आदि पुण्यकर्म से हो तो सुख देने वाले हार पाप कर्म से हो तो दुःख देने वाले होते हैं ।

**सू०—परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरो-
धाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥१५॥**

२—सर्वाँ रो नाश है जणी शूँ, मिटवा रा कारण है जणी शूँ, ने अर्णाँ री याद रे'जाय जणी शूँ, समझणा रे' तो ई सारा ही दुःख हीज है। क्यूँके एक जश्यो रे'वा रो अर्णाँ रो स्वभाव ही नी है।

५ प्र०—तब तो दुःख देने वाले पाप कर्मों का ही त्याग कर देना चाहिये, निर्वीज समाधि से सम्पूर्ण कर्मों का मूल क्लेश (अविद्या) के त्यागने की क्या आवश्यकता है।

उ०—हे सौम्य। वस्तु का एक समान न रहना बाधा (तकलीफ) करना, वविश पैदा करना, चित्तवृत्ति का बदलते रहना आदि बातें बाहर से सुखो मे वनी ही रहने से समझदार के लिये तो बाहरी सब सुख भी दुःख ही है।

नोट—“ये हि सस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय, न तेषु रमते बुध ॥१॥” (गीता)

सू०—हेयं दुःखमनागतम् ॥१६॥

२—दुःखाँ ने नी आवा देणा चावे।

५ प्र०—हे भगवन्। मैंने बड़ी भूल की जो इतने समय तक दुःखों को सुख समझ कर मारा मारा फिरा अब मुझे क्या करना चाहिये ?

३०—हे सौम्य ! दुःख है, इस को जान लिया तो त्याग करना चाहिये अर्थात् आने को कभी दुःख होवे ही नहीं ऐसा उपाय करना चाहिये । हे सौम्य ! अब आने वाले ही दुःख रोके जा सकते हैं ।

सू०—द्रष्टादृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥१७॥

२—देखे जणी रे, ने दीखे जणी रे मिल जावा शूँ हीज दुःख आवें हैं ।

(५) प्र०—हे भगवन ! इसी का उपाय सब ही करते हैं कि हमें कभी दुःख नहीं होवे, परन्तु दुःख किस से होता है, या न जानने से दुःख मिटने के बजाय बढ़ते ही जाते हैं । इस लिए दुःखों का कारण क्या है अर्थात् दुःख किस से होते हैं सो वृत्ताकर कहिये ।

३०—द्रष्टा (देखने वाले) का और दृश्य (दीखने वाले) का संयोग ही दुःख का कारण है अर्थात् देखने की वस्तु और दीखने की वस्तु की एकता (संयोग) से ही दुःख होते हैं ।

सू०--प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्म- कम् भोगाऽपवर्गार्थं दृश्यम् ॥१८॥

२—देखावणो, बदलणो, ठहरणो, हीज दीखे ज्यो वाजे है। अणी ने ही दृश्य भी के' है। अणी में ही शरीर इन्द्रियाँ बंधणों, ने छूटणो सारा ही आय गया।

(५) प्र०—हे भगवन् ! तो दृश्य (दीखने वाला) किसे कहते हैं यह मुझे पहले समझा दीजिये ?

उ०—दृश्य (दीखने की वस्तु) प्रकाश (ज्ञान) क्रिया (चेष्टा) स्थिति (ठहरना) का स्वभाववाला है, यही इन्द्रियाँ और उनके विषयो क आकार से दीखता है। यही दृश्य भोग (बध) और अपवर्ग (मोक्ष) (भोग मोक्ष भी इसी के अन्तर्गत है) के नाम से भी कहा जाता है। तात्पर्य यह है कि कुल दीखता है सो दृश्य ही है।

सू०—विशेषा विशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुण- पर्वाणि ॥१९॥

२—म्होटी चीजाँ, मही चीजाँ वणी शूँ मही, ने सब शूँ मही, ई यो दीखे जणी रा हीज भेद है। अणाँ ने ही विशेष, अविशेष लिङ्गमात्र, ने अलिङ्ग भी के' है। ई गुण-पर्व भी वाजे है।

(५) प्र०—हे भगवन् ! इस दृश्य को जरा मुझे और समझा दीजिये ?

३०—हे सौम्य ! दृश्य के मुख्य चार भेद हैं और किये जा सकते हैं । विशेष स्थूल (पञ्च महाभूत और ग्यारह इन्द्रिये इन्हे ही षोडशक भी कहते हैं अर्थात् स्थूल अविशेष पञ्चतन्मात्रा और अह्कार अर्थात् सूक्ष्म) लिंग मात्र सूक्ष्म (महत् तत्त्व और बुद्धि भी कहानी है) इनका निशान सूचक (बताने वाला) भी सूचक कहलाता है, अलिंग अव्यक्त (जिसका कुछ निशान नहीं) ये ही चौबीस तत्त्व अव्यक्त दृश्य हैं, जो कुछ दीखता है वह कुल दृश्य है ।

मृ०—दृष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययाऽनु-
पश्यः ॥२०॥

२—हरे'क दीखवा रे साथे देखवो है पण गे दोग्यवा म नाम भी नी मिले है । यो केवल देखवो हीज दीखे जो पाजे है । प्रगी ने हीज नष्टा भी के' है ।

(५) प्र०—अच्छा तो अब दृष्टा किसे कहना चाहिये सो भी समझा दीजिये ?

३०—देखना मात्र अर्थात् सीधे देखना ही दृष्टा कहना है इसी से वह सदा शुद्ध होने पर भी वृत्ति (विचार) के साथ मिला होने ज्यो भान होता है, अर्थात् देवन् चैतन्य को दृष्टा कहते हैं वह दीखता नहीं है ।

सू०—तदर्थमेव दृश्यस्यात्मा ॥२१॥

२—दीखे ज्यो देखे जणी शूँ ही साबित है ।

५ प्र०—हे भगवन् ! दृष्टा दीखता ही नहीं तो उसके होने की क्या सिद्ध है ?

उ०—हे वत्स ! दृष्टा के ही लिये दृश्य की स्थिति है । जहा-
दृश्य है, वहाँ दृष्टा है । विना दृष्टा के दृश्य की स्थिति
ही नहीं है । हे वत्स ! यह दृश्य दीखता है, यही उसकी
सिद्ध है । दृष्टा के विना यह दृश्य ठहर नहीं सकता ।

सू०—कृतार्थप्रतिनष्टमप्यनष्टं तदन्यसा-
धारणत्वात् ॥२२॥

२—यूँ ठीक समझले' वणी रे तो याँ दोयाँ रो मिल गे है
ही नी, पण अण जाण रे तो मिलावट है हीज ।

५ प्र०—हे भगवन् ! इस विचार से तो दृष्टा दृश्य कहना ही
नहीं घनता फिर यह शास्त्र ही किसके वास्ते है ?

उ०—जिसकी इस प्रकार समझ होगई है उसके लिये दृष्टा
दृश्य कहने की कोई आवश्यकता नहीं रहती, परन्तु
जिम्हें यह बात समझ में नहीं आई उसके लिये दृष्टा
दृश्य कहना ही पड़ता है ।

सू०—स्वस्वामिशक्तयोः स्वरूपोपलब्धिहेतुः
संयोगः ॥२३॥

२—देखे जणी ने जाणणो वा दीखे जणी ने जाणणो ही
गंगो मिलावट बाजे है । अणी ने ही दृष्टा दृश्य से संयोग भी
के हैं ।

(५) प्र०—दृष्टा और दृश्य को (जड़ चैतन्य को) आप की दया
से मैंने समझ लिया । अब कृपा कर यह बताइय कि
संयोग किसे कहते हैं—जो कि सम्पूर्ण दुःख का
कारण आपने कहा था ।

उ०—हे सौम्य ! यही संयोग कहता है कि मैंने दृष्टा और
दृश्य को (जड़ चैतन्य को) समझ लिया । क्योंकि
दृष्टा के देखने की वस्तु ही दृश्य है । इन दृष्टा दृश्य
दोनों के बिनाय इन का समझाने वाला गान तो
सकता है (कोई नहीं है) तो भी इनका समझना ही
कि यह दृश्य है और यह दृष्टा है यही संयोग
कहाता है ।

सू०—तस्य हेतुरविद्या ॥२४॥

२—या मिलावट मूर्खता गूँजी है ।

(५) प्र०—जब दो (जड़ चैतन्य का गति प्रपञ्च दृष्टा दृश्य) के बिनाय हीसरा कोई गति नहीं

जो कि इन दोनों को जाने तब यह तीसरा संयोग कहाँ से आगया अर्थात् संयोग का कारण क्या है, संयोग किससे होता है । यह कहिये ।

उ०—इस संयोग का कारण वही (विपरीत भावना विपर्यय वृत्ति) अविद्या है ।

**सू०—तदभावात् संयोगाऽभावो हानं तद्दृशे
कैवल्यम् ॥२५॥**

२—मूर्खता मिटवा शूँ या मिलावट मिटजाय, ने अणी रो मिटवो ही देखे, जणी रो निखाळश व्हे'जाणो के'है । अणी रो मिटणो "हान" वाजे है, ने निखाळशपण ने कैवल्य के' है ।

५ प्र०—तो यह संयोग कैसे मिटना है यह आज्ञा कीजिये ?

उ०—इस अविद्या (विपरीत ज्ञान) के ज्ञान के मिटने से संयोग (जड चैतन दृष्टा दृश्य का मिलान) मिट जाता है और यही (इस मिलान का मिटना ही) दृष्टा का कैवल्य (मोक्ष स्वरूपावस्थान केवल दृष्टा मात्र रह जाना दृश्य से अलग हो जाना) है ।

नोट - "तद्विद्याद्गुण संयोगवियोग योगसंज्ञितम् ।

म निश्चयेन योक्तव्यो योगा निर्दिष्ट चेतसा ॥" (गीताजी)

सू०—विवेकख्यातिरविल्लवा हानोपायः ॥२६॥

२—सांची समझ से अडग व्हे'जाणो ही अणी रो उपाय है । अणी ने ही अविल्लवा विवेकख्याति के'हे ।

प्र०—अविद्या से ही सम्पूर्ण दुखों की परंपरा उत्पन्न होती है और इस अविद्या का मिटाना ही मोक्ष का योग है । तब इस अविद्या के मिटाने का क्या उपाय है सो कृपा कर आज्ञा करें ।

३०—विवेकख्याति (निर्मल ज्ञान) ही इस अविद्या के मिटाने का मुख्य उपाय है अर्थात् तब निर्मल ज्ञान से (विद्या से) ही अविद्या मिटती है ।

नाट—'ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥

गीताजी



सू०—तस्य सप्तधा प्रान्त-भूमिः प्रज्ञा ॥२७॥

२—अणी अलग सांची समझ से सात तरंग विचार के'हे । एणो ए उचा राजा विचार के'ही नी गवे —(१) दुखों ने जाण पाया (२) दुखों से कारण मिलगया (३) लक्षणों भी देख लीजा (४) सांची समझ भी आयगी । (५) अपने वैधर्म्य ने धर्म मिटगयो (६) अपने तां मन से'ती सब ही तब निश्चय (७) इस ज्ञाने तां है ज्यो ही वैदव्य है । ज्ञान ही निश्चय

वणी रा व्हे'जाय है । अणी ने ही सांची, समझ ने परमपद के' है ।
यो ही अखंड महासुख चाजे है, ने योही योग है॥

५ प्र०—इस विवेक ख्याति नाम के निर्मल ज्ञान का होना कैसे मालूम होता है ।

उ०—इस निर्मल विवेक ख्याति के सात निशान हैं अर्थात् अविचल दृढ़भाव से उसे क्रम क्रम से ये सात निश्चय होते जाते हैं अर्थात् जब चैतन के पृथक् होते ही ये सात बातें उसके चित्त में दृढ़तापूर्वक मथाक्रम आती है इसी को विवेक ख्याति कहते हैं (१) अब कुछ भी समझना नहीं रहा । (२) अब कुछ भी छोड़ना बाकी नहीं रहा । (३) पाने के लिये अब कुछ भी बाकी नहीं रहा । (४) करने के लिये अब कुछ भी नहीं रहा । इन चार हालतों के सिवाय तीन हालतें और ऊँचे दर्जों की आती हैं, उन्हें चित्तविमुक्ति (चित्त का छूटना) कहते हैं और इन चार को प्रज्ञा विमुक्ति (अर्थात् कुछ यत्न करने से बुद्धि का छूटना) कहते हैं और ये तीन प्रयत्न ही बुद्धि का छूटना कहाती है वे तीन ये हैं—(५) बुद्धि से अब कुछ प्रयोजन नहीं रहा । (६) अब बुद्धि आगे से आगे भागती जाती है, जैसे पर्वत से लुढ़कता पत्थर नीचे ही नीचे चला जाता है, (७) अब कदापि इसका उत्थान (उठना) हो ही नहीं सकता अर्थात् यह तो विलकुल झमके (बंध के) योग्य है ही नहीं ।

(नोट) 'यदा ते मोह कलिल बुद्धिर्न्यतितरिष्यति ।

तदा गन्तामि निर्वेद श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥

तद्वुद्धयस्तदात्मानन्तान्निवष्टा स्तत्परायणाः ।
 गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषा ॥
 श्रुति विप्रतिपन्ना ते यदा स्थान्यति निश्चला ।
 समार्धावचलाबुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यमि ॥
 य लब्धा चापर लाभ मन्यते नाधिक तत ।
 यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥”

श्रीगीताजी

(नोट) (दु^१ख-दु^२खहेतु-मो^३च-मो^४चहेतु-बु^५द्धि की कृतार्थता
 बु^६द्धिलय-अपुनरुत्पत्ति^७ इस विवेक की ग्याति है) ।

सूत्र—योगाङ्गानुष्ठानादशुचिज्ञये ज्ञानदीप्ति-
 राविवेक ख्यातेः ॥२८॥

२—समझा पगत्या चढता जाय ज्यै ज्यै मूर्खता घटती
 जाय ने समझ आवती जाय, ने यूँ ठेठ मारची समझ तब पगाल
 जाय है ।

(५) प्र०—इस प्रकार की विवेक ख्याति किस उपाय से प्राप्त
 होती है ?

२०—हैं सौम्य । योग के अंगों को अङ्गपूर्वक साधने से
 चित्त शुद्ध होने लगता है । या चित्त मन से इन्ना
 शुद्ध होजाता है कि जिससे विवेक ख्याति उत्प-

होजाती है। अर्थात् चित्त शुद्ध हुये विना विवेक ग्याति नहीं होती और योग के अंगों के साधन विना चित्त शुद्ध नहीं होता अर्थात् योग के अंगों को क्रम से साधने से क्रम से चित्त इतना शुद्ध होजाता है कि विवेक ग्याति तक प्राप्त होजाती है।



सू०—यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणा- ध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि । २६ ॥

२—वा'रलो सुधारो, मायलो सुधारो, शरीर रो सुधारो, आस रो सुधारो, इन्द्रियाँ रो सुधारो, मन रो सुधारो, मू'पणा रो सुधारो, ने समझ रो सुधारो, सौची समझ रा इ आठ ही पगत्या हैं। अणाँ ने ही यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, ने समाधि के' है, ने अणाँ आठ ही पगत्या ने योग रा अंग भी के' है।

(५) प्र०—हे भगवन् । योग तो आप ने प्रथम आज्ञा किया था ही, अब योग के अंग क्या हैं सो कृपया पृथक् पृथक् आज्ञा कीजिये कि जिनको साधन करने से विवेक ग्याति रूपा निर्मल ज्ञान प्राप्त होता है अर्थात् स्वरूपा-वस्थान रूपा योग प्राप्त हो जाता है।

३०—(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४) प्राणायाम
(५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान, और (८)

समाधि, ये आठ ही योग के अंग हैं । जिनके प्रकार के योग हैं वे सब इन्हीं के अन्तर्गत आ जाते हैं ।

(नोट) यम नियम से लेकर विवेक ख्याति पर्यन्त क्रम से ज्ञान की दीप्ति होती है ।

सू०—अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा

यमाः ॥३०॥

३—दुस्वावणो, झूठ, चोरी, वीर्य की खराबी ने भेला कर्मा अर्णा पाँच वार्ता ने ही हिंसा असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य ने परिग्रह का है । अर्णा से छोड़णो ही चारलो सुधारो है, अर्णा ने यम का है ।

(५) प्र०—हे भगवन । प्रथम अंग जो आपने योग का यम नाम से यम विस्ने कहते है आता कीजिये । क्योंकि पाली सीढो ने ही आगे बढ़ सकता है ।

उ०—अहिंसा (दुस्व नहीं देना) सत्य (सान सोलना) अस्तेय (चोरी नहीं करना) ब्रह्मचर्य (वीर्य की रक्षा करना) अपरिग्रह (सत्ता नहीं करना) इन पाँचो का यम (राक) कहते हैं ।

(नोट) अहिंसा सत्यमवोधस्त्याग शान्तिरूपैः पुनः ।

न्याभूतेष्वलोलुप्षव मार्दव हीरचापतम ॥३॥

(यमाः)

सू०—जातिदेशकाल समयाऽनवच्छिन्नासार्व- भौमामहाव्रतम् ॥३१॥

२—जातरा, जगा'रा, वगतरा, ने नियम रा विचार शू भी ई काम नी करणा, पण बिलकुल अणार् ने छोड़ देणा ही म्होटी तपस्या है, अगी ने ही महाव्रत भी के है ।

(५) प्र०—हे भगवन् । ये पाचों यम जो आपने कहे, वे तो मनुष्य मात्र को ही साधने चाहिये और किसी-न-किसी अश मे सब साधते ही हैं फिर इनमे क्या विशेषता होने से ये विवेक ख्याति (विवेक ज्ञान) के शीघ्र उपयोगी होते हैं ?

उ०—इनमे जाति (जैसे गाय वा मनुष्य) देश (जैसे तीर्थ वा मन्दिर) काल (जैसे रविवार वा एकादशी), समय (जैसे भागते हुए वा विश्वास देकर) की कैद (विचार) न रखकर पालने से ही ये महाव्रत कहाते हैं और इनकी कैद मे आये हुए ही ये अणुव्रत के नाम से कहे जाते हैं अर्थात् किसी के भी लिये कहीं भी, कभी भी, किसी तरह भी इन यमों को कुछ भी नहीं विगडने देने से ये महाव्रत कहाते हैं और ये महाव्रत ही विवेक ख्याति के शीघ्र उपयोगी होते हैं ।

सू०—शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥३२॥

२—पवित्र रेणु, सतोष, स्वमणो, बारबार भगवान ने याद करणो, ने बणी रो आशरो राखणो, अर्णो ने शौच, सतोष तप स्वाध्याय, ने ईश्वर प्रणिधान के है । अर्णी मायला मुधारा ने हीज नियम भी के है ।

(५) प्र०—प्रथम अग यम को आप ने आज्ञा कर दिया अब योग के दूसरे अग नियम को मुझे समझाव्ये ?

उ०—शौच (पवित्रता = मन की और शरीर की सफाई) सतोष, तप (साधन करना) स्वाध्याय (मन गान्धों का विचार वा जप) ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर से सर्व-शक्ति समझना) ये नियम कहे जाते हैं ।

सू०—वितर्कयाधने पतिपक्षभावनम् ॥३३॥

२—अर्णी बार्ता ने होल्वा रो विचार द्ये तो पानी गन्दी पक्षवा रो विचार करणो ।

(५) प्र०—हे भगवन ! जो इन नियमादि ने उलटे विचार से इनको छुटा कर अपनी तरफ मीचने लगे तो क्या परता पातिये (जैसे मैं इनको तो उलटा ही समझता

ऐसे यम नियमादि को छुड़ाने वाले विचार बढ जाय
तो उसका क्या उपाय है ?

उ०—हे सौम्य । यो यम नियमादि को छुड़ाने वाले विचार
उठे तो उनके विरुद्ध यम नियम को दृढ करने वाले
विचार करने चाहिये ।

— — —

सू०—वितर्काहिसादयः कृतकारिताऽनुमोदिता
लोभक्रोभमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा
दुःखाऽज्ञानोऽनंतफला इति प्रतिपन्न-
भावनम् ॥३४॥

२—छोडवा गूँ, छोडावा गूँ, छोडवो ठीक समझवा गूँ
लोभ, क्रोध, ने आळम गूँ, थोडी, घणी, ने विलकुल, ई बातों
बूट जाय हैं, ने अणों रे बूट जावा गूँ अपार दुःख ने अपार
सृग्मता भुगतणी पडेगा गूँ विचारवा गूँ ई बातों पाछी गाढी
पकडाय जाय है ।

(१) प्र०—यम नियमादि को दृढ (स्थिर) करने के विचार
कैसे करे ?

उ०—यम नियमादि के न्यागने का विचार होते ही उसके
विरुद्ध यम नियमादि को दृढ करने का विचार यो करे

कि हिंसा आदि करना, (जोकि यम नियमादि का त्यागना है) बहुत बुरा है । क्योंकि इसका फल अपार दुःख और अज्ञान है । इन यम नियमादि का स्वयं त्याग तो कदापि करना ही नहीं चाहिये, परन्तु किसी से इसका त्याग कराना भी बहुत बुरा है, त्याग कराना तो क्या किसी ने त्याग कर दिया हो, उसे अच्छा समझना वा उसकी प्रशंसा करना भी महा अज्ञान और अनन्त दुःख देता है । क्योंकि ऐसे तत्कर्म का त्याग लोभ क्रोध या मूर्खता से ही किया जाता है । और जब प्रत्यक्ष ही मूर्खता से किया हुआ काम, दुःख देता है तब इतनी बड़ी मूर्खता का अरुण ही दुःख नतीजा होगा । इन यमादि योग अंगों का त्याग मृदु मध्य और अधिमात्र तीन प्रकार का है । अर्थात् थोड़ा, मध्य, (बुद्ध) और विलंबुल । जो विलंबुल ना क्या, परन्तु थोड़ा भी इनका त्याग महा अनर्थ का मूल है । इस प्रकार की भावना (विचार) करे तो योग पंगु अंग स्थिर (दृढ प्रतिष्ठित) हो जाते हैं ।

मृ०—अहिंसा, प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैर-

त्यागः ॥३५॥

१—जणी रे यूँ दुःखावणो छूट जाय, घणी रे मूँला शाने भी
घणी ने ही नी दुःखाय शाने ।

(०) प्र०—हे भगवन । योग पंगु अंगों से प्रथम आपने यम बना

था और वह पांच तरह का कहा था । उस में प्रथम अहिंसा बतलाई थी सो इस प्रकार अहिंसा प्रतिष्ठित (दृढ) होजाने से क्या होता है ।

उ०—जब इस प्रकार अहिंसा दृढ (स्थिर) हो जाती है, तब उस योगी के पास (सामने) कोई भी किसी का दुःख नहीं दे सकता ।

सू०—सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाऽऽश्रयत्वम् ॥३६॥

२—यू ही झूठ छूट जाय, तो वो के'वे जगो बहे'जाय ।

(५) प्र०—जब सत्य की दृढता हो जाती है, तो क्या होता है ?

उ०—सत्य की दृढता हो जाने से उसका वचन निष्फल नहीं जाता, वह कहता है, वही हो जाता है ।

सू०—अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥३७॥

२—यू चोरी छूट जाय तो वर्णा रे सब आछी आछी चीजों धाँसकर बहे' जाय ।

(५) प्र०—अस्तेय-इमान्तर्ग (चोरी नहीं करना) की प्रतिष्ठा (स्थिरता) होने पर क्या होता है ?

३०—अन्तेऽहं नृहं हो जाते से नन उत्तम उत्तम वस्तु उनके पास आ जाती हैं ।

०—ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥३८॥

३०—यूँ बाँगेरी खराबा छूट जावा भूँ बल प्रथ ।

१) प्र०—ब्रह्मचर्य (वीर्य की रक्षा) की दृढ़ता से क्या होता है ?

३०—ब्रह्मचर्य की दृढ़ता से पारिवारिक और मानसिक उत्तम बढ़ जाता है ।

०—अपरिग्रहस्थैरे जन्मवयं तत्सर्वबोधः ॥३९॥

—यूँ ही भेला गणों छूट जाय ता जन्म वृद्धि का ।
सर्व पर जाय ।

१) प्र०—अपरिग्रह कद होने से क्या होता है ?

३०—अपरिग्रह (संपन्न न रखना) की निश्चिता से प्राप्त हो
अपने तीनों जन्मों (पाले क्या भी क्या न करेगा
हूँ वयो है आगे क्या पाइता वयो होइता ।
मात्र होना है ।

मु०—शैवान्माहजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥४०॥

— 'तो जितना मत मतना मैं 'पापना' शरीर से शरा 'पाता'
— 'तो जहाँ से शरीर में भी मोह ली रे' ।

१. १० - ज्ञान का प्रथम में योग के प्रथम अंग गम के रूप होते
 २. ११ - ज्ञान का प्रथम में योग के प्रथम अंग गम के रूप होते
 ३. १२ - ज्ञान का प्रथम में योग के प्रथम अंग गम के रूप होते
 ४. १३ - ज्ञान का प्रथम में योग के प्रथम अंग गम के रूप होते
 ५. १४ - ज्ञान का प्रथम में योग के प्रथम अंग गम के रूप होते
 ६. १५ - ज्ञान का प्रथम में योग के प्रथम अंग गम के रूप होते
 ७. १६ - ज्ञान का प्रथम में योग के प्रथम अंग गम के रूप होते
 ८. १७ - ज्ञान का प्रथम में योग के प्रथम अंग गम के रूप होते
 ९. १८ - ज्ञान का प्रथम में योग के प्रथम अंग गम के रूप होते
 १०. १९ - ज्ञान का प्रथम में योग के प्रथम अंग गम के रूप होते

पश्चिम में भी आप । पश्चिम की समता (व्यभिचार) ।
 '१०' २४ ३५४ अहिंसा में भी व्यक्त रहता है ।

४८-मन्त्राणि श्रुत्वा मनस्यैवाप्येन्द्रियजयात्म-
दर्शनयोग्यमानि च ॥४९॥

सू०—स्वाध्यायादिष्टदेवता संप्रयोगः ॥४४॥

२—नू बारबार याद राखवा जे इष्टदेव मिले ।

(५) प्र- आपने स्वाध्याय कहा था, उस से क्या होता है ?

२- स्वाध्याय [जप वा स-शाम्] की दृढ़ता होने से हमारा इष्टदेव (जिसे हम चाहें वह देवता) मिल जाता है ।

सू०—समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥४५॥

२—यु भगवान् मे आशय लेवा जे अराउ मुरा जे' ।

(५) प्र- पापों निष्कर्म ईश्वर प्रणिधान (ईश्वर की ही सब शक्ति समझ कर उसी में सब क्रियाओं का अर्पण) है उसी देवता से क्या होता है ?

२- ईश्वरप्रीति मन से समाधि की सिद्धि होती है ।

आज्ञा कर दिये और उन की वृत्ता की पहिचान भी आपने एक एक करके समझा दी। अब आग का तीमरा अंग जो आप ने आसन कहा था, वह आज्ञा कीजिये कि आसन किन्ने कहना चाहिये।

७० जिस तरह बहुत समय तक बैठे रह सकने पर भी तत्कालीन मालूम नहीं हो वही आसन कहाना है।

७०-प्रयत्नशैथिल्याऽनन्ततमापत्तिभ्याम् ॥४७॥

१-उपाय बहुत अपार मे मन लागवा पे ये संवाय है।

(५) ७० बहुत समय तक एक तरह बैठे रहने में अप्रयत्न तत्कालीन मालूम होती है जिस उपाय में बिना हिंसे के एक ही प्रकार से बहुत दूर तक बैठ सकते हैं या आज्ञाकीजिये ?

७० अहंकार पर्वक बोधिंग एवं दस बार देने से अनन्त शक्ति में ही अपनी शक्ति मानने में आसन सुख सहित स्थिर हो जाता है, अर्थात् यत्न लगाकर बैठे से और अपनी शक्ति अनन्त शक्ति में समझा देने से आसन मिट्ट हो जाता है।

सं०—ततोद्वंद्वानभिघातः ॥४८॥

२—अग्नी शूँ गर्मी सर्दी नी व्यापे है ।

(५) प्र० आसन सिद्ध (स्थिर प्रतिष्ठित) होने से क्या होता है ?

उ० आसन की प्रतिष्ठा (सिद्धि) हो जाने से गर्मी सर्दी आदि की बाधा नहीं होती ।

सू०—तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गति विच्छेदः प्राणायामः ॥४९॥

२—शूँ शरीर रो सुधारो माध्याँ केडे श्वास री चाल ठेर जाय । अग्नी ने श्याम रो सुधारो या प्राणायाम के' है ।

(७) प्र० आप ने चतुर्थ अंग योग का प्राणायाम कहा था सो प्राणायाम किसे कहते हैं ?

उ० श्वासन के रुक हो जाने पर श्वास का आना जाना रुक जाना ही प्राणायाम है ।

सू०—वाह्याऽऽभ्यन्तरस्तंभवृत्तिर्देशकाल

संख्याभिःपरिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥५०॥

२—श्वाम रो वा'ग्णे निकळणो, माँयने आवणो, ने ठे'रणो, गता रे' है, अणी पे जगा' शूँ, वगत शूँ, ने गणती शूँ आशान राग तो यो फोरा पड ने वत्तो ठे रवा लाग जाय ।

(५) प्र० श्वाम का भीतर रुकना प्राणायाम है, या बाहर रुकना प्राणायाम है, अथवा रुकना ही प्राणायाम है इसका भेद समझाइये ?

उ० हे सौम्य । श्वाम का रुकना ही प्राणायाम है और उसके चार भेद हैं । बाहर रुकना, भीतर रुकना, बाहर भीतर दोनों ही रुकना (अर्थात् वनञ्जय प्राण को पकड़ने से दोनों का रुक जाना) इसी को रेचक कुम्भक (बाहर ठहरना) पूरक कुम्भक (भीतर ठहरना) स्तम्भ कुम्भक (वनञ्जय को पकड़ने से दोनों का रुकना) कहते हैं और यह ज्यो ज्यो अधिक रुकता जाता है, न्यो न्यो दीर्घ सूक्ष्म (मुख्य प्राण) से मिलता जाता है इसकी अधिक रुकने की और कम रुकने की पहिचान नासिका के बाहर और भीतर जाने की धमी से दा अधिका से अथवा गिनती से कि इतनी गिनती तक रुका अथवा इतनी देर से इतने स्वान मदा जाने हैं उस से इतने ज्यादा कम हुए इन प्रकार से की जाती है ।

नोट—“अपाने जुहति प्राण प्राणोऽपान तथाऽपरे
प्राणाऽपानगती रुद्धा प्राणायाम परायणा ॥”

श्रीगीता जी

सू०-बाह्याऽऽभ्यन्तरविषयाऽऽक्षेपी चतुर्थः॥५१॥

२—अणाँ तीन ही बातों ने छोड़ने केवल ठे'रणो हीज श्याम
गं सर शं वत्तो सुधारो हे । अणी ने हीज चौथे सुधार भी क'
है । इ' ने हीज केवल कुंभक भी के'वे है ।

(१) प्र० हे भगवान ! आप ने तीन प्रकार प्राण के रुकने क
उपाय कहे । इन सब से अधिक प्राणायाम कौनसा है
कि जिस के प्राप्त हुए बाद प्राणायाम करने की
आवश्यकता ही न रहे ।

३० जो बिना ही पफ्ट छोड़ के स्वत ही प्राण ठहर जाय
तब समझ लना चाहिये कि अब प्राणायाम सिद्ध हो
गया । यही चतुर्थ प्राणायाम है । इसे ही केवल कुंभक
कहते हैं ।

नोट—“प्राणाऽपानो समौ कृत्वा, नाम्नाभ्यन्तर चारिणौ”

(गीताजी)

“अति श्वरो यस्य विनैव लभ्य,

अयु श्वरो यस्य विनायरोऽयम् ।

यत्न श्वरो यस्य विनायकस्यम् ,

स एव योनी स गुरु स पूज्य ॥

सू०—ततः क्षीयते प्रकाशाऽऽवरणम् ॥५२॥

२—अणी शू मूर्खता घटे है ।

(१) प्र०—इत प्राणायामो से क्या होता है ?

३०—तमोगुण, रजोगुण आवरण कम होकर सतोगुण (ज्ञान) बढ़ने लगता है ।

सू०—धारणासु च योग्यता सततः ॥५३॥

२—अणी शू मन स्थिरता ने धारणा करवा लायक भी हो जाय है अर्थात् मन रा सुधारा (धारणा) र लायक भी मन हो जाय है ।

(१) प्र०—चौथे प्राणायाम से क्या होता है । सतोगुण बढ़ने से क्या होता है ?

(नाट) यथाक्रम प्रत्याहार तो वैमुक्तिक न्याय से भी होता है ।

२०—मन निर्मल होकर धारणा के योग्य (मन ऊपर टारने के योग्य) हो जाता है ।

सू०—स्वविषयाऽसंप्रयोगेचित्तस्य स्वरूपाऽनु-
कार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥५४॥

२—सुख दुःखों में भी इन्द्रियाँ मन से आधीन रहे'वा लाग जाय । अजी ने इन्द्रियों से सुधारो अथवा प्रत्याहार भी वे'है । जो इन्द्रियों ने बा'गणे भटकणों छोड़ाय, मन से साथ राखना शुरू भी ले है ।

(१) प्र०—अब रूपाकर योग का पाँचवाँ अंग जो आपने प्रत्या-
हार कहा था, वह कहिये ?

उ०—इन्द्रियों का अपने अपने विषय (सुनना आदि) छोड़
कर चित्त के जैसा ही हो जाना (जिधर चित्त ठहरे
उधर ठहर जाना) ही प्रत्याहार कहाता है ।

(नाट) 'यदा गच्छते चायं कुर्मोऽज्ञानीव सर्वत ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तम्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥'

गीतागी

सू०—ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् ॥५५॥

३०—हमसे इन्द्रिये अपनी स्वतन्त्रता छोड़, चित्त के परम (विलकुल) आधीन हो जाती है नहीं तो प्रत्याहार बिना ये चित्त को अपनी तरफ खींच लेती है ।

(नोट) “तन्मात्रमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।

पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥

इन्द्रियाणां हि चरता यन्मनोऽनुविधीयते ।

तदस्य हरति प्रज्ञा वायुर्नावमिवाम्भगि ॥

यत्ततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चित् ।

इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रपञ्चमन ॥’

श्रीमद्भगवद्गीता

इति वांगशास्त्रे द्वितीय पाठे पानखल प्रतिपादिका
लघु टीका समाप्ता ।



है। क्यूँके म्होटी चीज मही शूँ मही चीज मे शूँ आवे है, ने वणी मे ही पाछी समाय जाय है। अगी रो विचार नाम, अर्थ, ज्ञान सहित कर तदाकारता व्हे'जाणो भी सविचारा है, ने अणी मे भी नाम, अर्थ, ज्ञान, अलग कर देखणो निर्विचारा है अर्थात् प्रकृति भी जदी दृश्य व्हे'ने दीखवा लाग जाय, अर्थान् सब शूँ मही भी है, या ही प्रकृति व्ही'ने जदी याही निर्विचारा समापति शूँ दीखवा लाग जाय, जदी अणी रा विकार री तो बात ही कई।

४—वारी की (सूक्ष्मता) री हद ठेट प्रकृति तक है, यूँ एक शूँ एक म्थूल है, ने एक शूँ एक सूक्ष्म, पण अठे सूक्ष्म शूँ मतलब शब्दादि विकल्पादि सेती व्हे'ने वणाँ विकाराँ ने छोड ने-पष्ठितत्र रा चक्र पे बुद्धि चाल, ने चोईश तत्वाँ मे बुद्धि रमती रमती सूक्ष्म री कानी वधे, अणी ने सूक्ष्म विषय कियो। मिश्र पदार्थ, ने अविमिश्र पदार्थ। मिश्र पदार्थ विकार, ने अविमिश्र प्रकृति विमृति ने जागणी चावे। यूँ प्रकृति मे मतो व्हे'णो सूक्ष्म विषयन्व गएयो है। पण व्हे' अणी विधि शूँ।

(तन्मात्रा गधादि) सूक्ष्म है वैसे सब से सूक्ष्म विषय किसे समझना चाहिये ?

३० सूक्ष्म विषय की अवधि शून्य पर्यन्त है अर्थात् सब से सूक्ष्म विषय अव्यक्त (शून्य) है।

गता कर नियम (दूसरा अंग) कहा । फिर सूत्र ३२-३३ में
 इनको छोड़ने की इच्छा हो तो उसके भी त्याग का उपाय सूत्र
 ३४ में उस इच्छा का भी त्याग करना कहा । फिर सूत्र ३५ से ३९
 तक पाँचों यमों के यथार्थ सिद्ध होने का पृथक् पृथक् फल कहा ।
 इसके उपरान्त सूत्र ४० से ४५ तक पाँचों नियमों के सिद्ध होने
 से जो फल होते हैं, वे अलग अलग कहे । फिर सूत्र ४६ आसन
 का कर उसकी सिद्धि का उपाय बता कर सूत्र ४७-४८ में उसकी
 सिद्धि का फल कहा । फिर सूत्र ४९, ५० और ५१ में प्राणागम
 की सिद्धि के फल कहे । फिर सूत्र ५४ ५५ में याग या पाचय
 ऋग प्रत्याहार कह कर उसका फल बता कर इस द्वितीय पाठ का
 समाप्त किया । इसका मतलब मेरी नमस्कार में यह आश्वासन
 अभ्यास तो तीव्र हो और वैराग्य मंद हो उनसे लिये यह आसन
 साधन (अभ्यास) पाठ आपने कहा । इससे प्रथम सिद्धि
 का बताया है कि मुख्य समाधि की योग्यता ही साधन का फल
 है । फिर अष्टाङ्ग योग जो कि एक से एक का सीढ़ी की भाँति
 मिलमिला बना हुआ है अर्थात् एक की सिद्धि और दूसरे का
 प्रारम्भ ही होता बताया है और इसमें भी आपने कहा कि साधन
 गुणात्मा कर के योग व तत्त्व को करामतकवत् कर दिया है । इस
 समझ से इस साधन पाठ के किन्हीं भी साधन । साधने का
 आवश्यकता ही न पड़े । यदि कोई इनको साधने की इच्छा रखे
 तो फल तो यह सब ही साधन गान की बात से साधन

॥ इति ॥

पाताञ्जल योग दर्शन



तृतीय (विभृति) पाद

सू०—देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥१॥

८—एक काली मनने बाँध राखणो मनने सुवाणे वा गणना-
वाज १, हे ने एक वात मन मे धार लेणी भी के १ ।

(५) प्र०—आपने क्या कर के योग के आठ अङ्गों में से पाँच
अङ्ग क्रिया योग (यम नियम, आसन प्राणायाम
और प्रत्याहार) तो फल सहित समझा दिये अब छपा
कर धारणा विषय कहने हैं क्या कहिये ?

उ०—किसी एक जगह में [शरीर के भीतर वा बाहिर]
चित्त को लगा देना [लगाये रखना] ही धारणा है ।

सू०—तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥२॥

उ०—उसी स्थान में (जहाँ धारणा की गई हो) चित्त का निश्चल (एक सा) बराबर लगा रहना ध्यान कहलाता है ।

सू०—तदेवार्थमात्रनिर्मासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥३॥

२—आपों भूल ने मन में वणी जगत् में मिल जाणों समस्त में मृगतों वा समाधि साजे है ।

(१) १—आठगों योग का अंग जो आप ने समाधि कहा था, उस भी रूपा कर आज्ञा कीजिय ?

२—जब जगत् चित्त ऐसा ठहर जाय कि स्वयं आपको भी भूल कर मानों उगी पदार्थ रूप हो जाय, तब वही (ध्यान ही) समाधि कही जाती है, अर्थात् जब चित्त एक जगत् लगाया जाता है तब वह धारणा कही जाती है । जब उस जगत् में ठहर जाता है तब ध्यान कहाता है और उगी में चित्त के मिल जाने में (तदाकार हो जाने में) समाधि कही जाती है ।

सू०—त्रयमेकत्र संयमः ॥४॥

फल कहिये । जैसा कि पहले पाँचों अंगों का आप ने कहा था ?

उ०—धारणा का फल ध्यान और ध्यान का फल समाधि है और ये तीनों एकट्टे होने में समय कहते हैं । किसी न्यान में चित्त का ऐसा लग जाना कि वह मानों आप को भी भूल जाय, इस को भी समय कहते हैं ।



सू०—तज्यात्पूजालोकः ॥५॥

२—यै ऊँडो विचार मधवा शूँ समभा बधे ।

(५) प्र०—जब ये तीनों साथ ही होने में समय इस एक ही नाम में बहे जाने हैं तो इस समय का ही क्या पदार्थ को कहिये ।

उ०—होग्य । समय सिद्धि हो जाने पर पहले जो हमें विवेक ग्याति नाम की प्रज्ञा पड़ी थी (जिसकी प्राप्ति के ही लिये अष्टाङ्ग योग (योग व आठो अङ्ग) करने गये हैं) उस (विवेक ग्याति) का प्रकाश होता है ।



उ०—उसी स्थान में (जहाँ धारणा की गई हो) चित्त का निश्चल (एक सा) बराबर लगा रहना ध्यान कहा जाता है ।

सू०—तदेवार्थमात्रनिर्मासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥३॥

२—आपो भूल ने मन रो वणी जगा' में मिल जाणो समझ रो सुधारो वा समाधि बाजे है ।

(५) उ०—आठवाँ योग का अग जो आप ने समाधि कहा था, उसे भी कृपा कर आज्ञा कीजिये ?

उ०—उस जगह चित्त ऐसा ठहर जाय कि स्वयं आपको भी भूल कर मानो उसी पदार्थ रूप हो जाय, तब वही (ध्यान ही) समाधि कही जाती है, अर्थात् जब चित्त एक जगह लगाया जाता है तब वह धारणा कही जाती है । जब उस जगह में ठहर जाता है तब ध्यान कहा जाता है और उसी में चित्त के मिल जाने से (तदाकार हो जाने से) समाधि कही जाती है ।

सू०—त्रयमेकत्र संयमः ॥४॥

२—अर्थात् तीनों रो ही एकट्ठो नाम ऊँडो विचार वा संयम बाजे है ।

(५) प्र०—हे भगवन् ! इस धारणा ध्यान समाधि का पृथक् पृथक्

फल कहिये । जेसा कि पहले पांचों अंगों का आप ने कहा था ?

उ०—धारणा का फल ध्यान और ध्यान का फल समाधि है और ये तीनों इकट्ठे होने से मयम कहाने हैं । निमी ग्यान से चित्त का गेमा लग जाना कि वह मानों आप को भी भूल जाय, हम को भी मयम कहने हैं ।

— — —

मृ०—तज्जयात्पूजालोकः ॥५॥

२—यै ओं विचार मधवा औ मयम वय है ।

(५) प्र०—जयये तीनों मान्य ही होने से मयम हम एक ही नाम से बोलते जाने हैं तो हम मयम या ही गया था है सो कहिये ।

उ०—हे योग्य । मयम सिद्धि हो जान पर पहल जा हुगे विवर गयाति नाम श्री प्रसा कही थी (जिगदी लाल) कही लिये अष्टाङ्ग योग (योग के आठो अङ्ग) का गार है) हम (विवर गयाति) या प्रकाश होत है ।

— — —

सू०—तस्यभूमिषु विनियोगः ॥६॥

२—अगी समझ ने पगत्या पगत्या वधावणी चावे ।

(५) प्र०—हे भगवन् ! आपने साधारण आज्ञा करी थी कि किमी जगह में इन तीनों को इकट्ठे करने से ही समय होता है, सो कृपा कर यह कहिये कि किम जगह में यह समय करने से विवेक ख्याति नाम का सच्चा अनुभव प्राप्त होता है ?

उ०—इस समय को सीढ़ी दर सीढ़ी (सोपान क्रम) में करना चाहिये अर्थात् एक दम उँची बात में भी चित्त लगा देने से वह वहाँ नहीं ठहर सकता और नीची में लगाने से पीछा गिर जाता है। इसलिये अपने अधिकार के अनुसार ही किसी दर्जे पर इस समय (चित्त की स्थिति) को करना चाहिये, और एक दर्जा तय (पक्का) करके फिर आगे को बढ़ना चाहिये ॥

(नोट)—इसी समय को कितने ही भावना, मनन, वा विचार विशेष भी कहते हैं, यह जीवमात्र में होने पर भी मनुष्यों में विशेष और उनमें भी योगी में अधिक होता है। योग के आठ अंग ही आठ दर्जे समझने चाहिये। उन में यह पहला दर्जा है। इस यम में भी अहिंसा पहला है। इसमें भी अगुप्तन और परमागु से इस क्रम में एक एक से आगे का दर्जा। इनमें भी यम,

नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार तक एक श्रेणी में समझे जाकर चारगा ध्यान, समाधि दूसरी श्रेणी में माने जाते हैं। इन में आगे एक दर्जा स्वाम योग का विवेकान्याति है और उसके आगे परम योग-कृतकृत्यता-ही है और ये कुल चित्त को तबदीली (परिणाम) है। मृदु निम्र विचित्र एकाग्र, समाधि और निरोध ही यथाक्रम चित्त की भूमिका हैं और इन्हीं के अतः परम योग के आठे अंग हैं, परम समाधि के लिये ये आठे अंग हैं।

मृ०—त्रयमन्तरङ्गं पुर्वेभ्यः ॥७॥

—इ तीन ही पगत्या पेंली रा पाच ही पगत्या॥ उपरती है।

(१) प्र०—उन दर्जों (सीद्धियों) को कहिये ?

उ०—ये तीनों ही (धारणा, ध्यान और समाधि) पाच पों पांचो (यम, नियम, आसन प्राणायाम और प्रत्याहार) में अतः परम (योग के निदर में) आते हैं और इन के पांचो अंग मूलता को लिये होते हैं ये के धारणी अंग (पांचो सीद्धियों की तर) हैं और ये तीनों भीतरी (तीनों अतः परम की तर) हैं क्योंकि उन पांचो में तो शरीर की तर से आता है और उन तीनों में वेदना विचार की तर

होने से ये (वारणा, ध्यान और समाधि) तीनों योग के उन पाँचों (यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार,) से यथाक्रम ऊँचे दर्जे के हैं।

सू०—तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥८॥

२ - अखंड महासुख तो अणाँ शूँ भी ऊँचो है।

(५) प्र०—क्या सब से मुख्य योग के निकट के ये ही तीनों अंग हैं, या इन से भी आगे कोई योग का निकट अंग है ?

उ०—मुख्य योग के तो ये तीनों भी बाहरी अंग ही हैं, अर्थात् योग (चित्तवृत्तियों का निरोध) दो प्रकार का है सप्रज्ञात, (विवेकख्याति) और असप्रज्ञात, इर्मा का सर्वाज और निर्बीज भी कहते हैं। उस में ये वारणा आदि तीनों सर्वाज योग के खास अंग हैं और निर्बीज के तो ये बाहरी अंग ही हैं। भाव यह है कि विवेकख्याति (सर्वाज समाधि) मयम की स्थिरता के बाद ही आती है (मयम स्थिर हुए पहले नहीं होती) परन्तु निर्बीज विना विवेकख्याति (सर्वाज) के नहीं आती (अर्थात् विना विवेकख्याति (सर्वाज) पाये कोई केवल मयम से ही निर्बीज समाधि को नहीं पा सकता।

नोट—इनके (सयम के) आगे का दर्जा एक और है जिसमें विवेकख्याति कहते हैं और उस के आगे ग्याम योग आता है । ग्याम योग जो निर्बीज समाधि है उसके निकट का दर्जा विवेकख्याति (सच्चा अनुभव) है और विवेकख्याति के पान का दर्जा यह (चारणा ध्यान समाधि) है अर्थात् इन तीनों के बीच में एक विवेकख्याति नाम का दर्जा और है । फिर उस (विवेकख्याति) के बाद ग्याम योग है ग्याम योग निर्बीज समाधि को कहते हैं और उसके निकट का (प्राप्ति का) अग सवीज (संप्रज्ञात) समाधि है और यह चारणा ध्यान समाधि तो उस संप्रज्ञात—(सवीज विवेकख्याति) समाधि का निकट का अग होने में ग्याम योग-जो निर्बीज समाधि है, उसका तो यह दाहना (एक दर्जा दूर का) अग ही होगा । अर्थात् सर्वोपरि याग असंप्रज्ञात (निर्बीज निरोध) है । दूसरी तीसरी सीढ़ी संप्रज्ञात (सवीज विवेकख्याति) है और तीसरी सीढ़ी यह सयम समाधि है —

नहि ज्ञानेन सत्ता पवित्रमिदं विद्यते ।

तत्तद्वय योगस्तस्मिन् ध्यातेनात्मनि विवर्तते ॥

श्री गानेश

सू०—व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभव प्रादु-
र्भावौ निरोधक्षणचिन्तान्वयो निरोध-
परिणामः ॥६॥

२—मन रो आपे आवा रो स्वभाव छूट ने, देखे जणी रे
आधीन रे'वा रो स्वभाव पडजाय, यो ही अखंड महासुरज बाजे
है। अणी ने ही मन रो स्वभाव बदल जाणो अर्थात् निरोध
परिणाम के' है।

५) प्रः—हे भगवन् । मैं उस योग का खुलामा सुनना चाहता
हूँ, कि जो खाम योग है और जिसके यह धारणा आदि
तीनों बाहिर के दूर के ही साधन गिने जाते हैं और यह
भी आक्षा करे कि यह समाधि वस्तु क्या है कि जिसमें
ये धारणा ध्यानादि भी नहीं पहुँच सकते। हे भगवन् ।
यह राम योग निर्बीज समाधि क्या है ?

३०—जब चित्त की वृत्तियों के मृद्म अंश (संस्कार) भी
विमोक्षयानि के अमर में रुक जाते हैं तब चित्त की
उसी रुकने की हालत को निरोध कहते हैं और यही
चित्तवृत्ति निरोध नाम का योग तुम्हें प्रथम कहा था ।
वह चित्त की ही एक हालत (परिणाम) है इसे ही
निर्वीज समाधि भी कहते हैं ।

नोट—चित्त के संस्कारों के उठने की (बहने की चंचलता की)
हालत को छोड़ कर स्थिरता की हालत में आजाना

हो राम परम योग (निर्वीज समाधि) है । चित्त की इस हालत (गहरी संस्कार तटतीली) को निरोध परिणाम कहते हैं । यही चित्तवृत्तिनिरोध नाम से पढ़ने कहा था और निर्वीज भी इसे ही कहते हैं ।

सू०—तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥१०॥

२—मन से ऊँड़ी या बात जम जायगी पढ़ पाओ मन प्राप नी आय गके हैं ।

(५) प्र०—हे भगवन् । इस प्रकार व चित्तवृत्ति निरोध से (निर्वीज परमयोग से) चित्त की हालत तटतीली होकर पीछी नीची हालत में चला गयी जाती है जो चित्त की यह निरोध की हालत भी तटतीली ही है तो यह निरोध निर्वीज (फिर पीछा न जाने वाला) बने ही सकता है । निर्वीज समाधि नाम का जो योग है, वही सब से उत्तम योग था जो है ? जब चित्त बहने की हालत का (चला चल) स्थिरता की हालत में आजाता है तो फिर पीछा बहने की हालत में (चला चलता भी हालत में) चला नहीं जाता यह निरोध का हालत स्थिर स्थिर बने रहती है ।

दृढ और सच्चे खयाल) जम जाते हैं कि फिर वहाँ उनके सिवाय अन्य किसी भी खयाल की समाधि कदापि हो ही नहीं सकती अर्थात् विवेक ख्याति के संस्कार मात्र ही जब रह जाते हैं, तब दूसरे कोई विचार न आकर वह एक ही (निरोध विवेक ख्याति के संस्कार की ही अखंड धारा बहती रहती है) इसी चित्त की हालत को निर्बीज (दूसरे खयाल में रहित चित्त की हालत) कहते हैं ।

(नोट) 'य लब्ध्वा चापरं लाभ मन्यते नाधिक तत ।

यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥”

श्रीगीतार्ज

मझे अनुभव (विवेक ख्याति) के संस्कार इसमें ऐसी जड़ जमा लेंते हैं कि फिर वे ही वे रहकर दूसरे भूटे अनुभव (अविद्या के संस्कार) वहाँ नहीं हो सकते इसमें संस्कार (भीतरी चित्त की हालत) तबदील होती है अर्थात् चित्त अपनी असली हालत का पालना है ।

सू०—सर्वार्थनैकाग्रतयोः त्रयोदशो चित्तस्य
समाधि परिणामः ॥११॥

२—मन से आपने आवर्णा, घट ने एक कानी सेवा से स्वभाव पर आप से मन से नाम लक्षण) बदलना जाने है ।

*) २०—सप्रज्ञान समाधि को विवेक ख्याति है, यन्मं गेमं

क्या सम्भार (गहरे विचार) हो जाते हैं कि जिनकी फिर तबदीली ही न होकर वे ही वे (एक ही प्रकार के) रह जाते हैं ? उम विवेक न्याति मध्ये अनुभव) के विचार ऐसे क्या होते हैं कि जिनको जब फिर नहीं उग्रहती अर्थात् जिन विवेक न्याति में यह निर्भीज हालत होती है वह मद्धा अनुभव (विवेक न्याति क्या है, जब विवेक न्याति की हालत में निराश की हालत होती है तो विवेक न्याति की हालत किस में होती है ?

३० - जब चित्त का आत्मा में अलग भान होकर आत्मा में (नष्टा न) चित्त का मिश्रण (एकता) मिटन लग जाता है तब इन्हीं चित्त की हालत को विवेक न्याति या अमग्रज्ञान समाधि के नाम से कहते हैं और यही हालत गहरा सम्भार (परमयोग) में होने लगती है कि फिर वह निराश की हालत चित्त की कभी भी तबदील नहीं हो सकती ।

(नोट) इस में बहुत शकाल करने की हालत बदल कर चित्त की एकाग्रता की हालत हो जाती है । यह भी चित्त की एक प्रकार की हालत है कि जिसमें मूल सर्वज्ञ अनुभवों का छोटा स्थान में चित्त की आत्मा हालत की तबदीली हो जाती है । इसके मिटकर एक ही विवेक न्याति में बाहरी विचार (गहरी विचार) आत्मा एकाग्रता (एकाग्रता ज्ञान) की ही हालत में चित्त करने लग जाता है इसी में फिर वे ज्ञान, (चित्त) आत्मा होने पक्का होते हैं । बहुत तरंग उठते हैं मरणात्, हार

(एक ही तरफ) चित्त लगने से एकाग्रता से विवेक-
स्थिति होती है, इसमें चित्त की हालत बहुत खयाल
करने की तबदीली होकर एकाग्र (एक तरफ) हो जाती है।

**सू०—ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यपूत्यौ चित्त-
स्यैकाग्रतायाः परिणामः ॥१२॥**

२—मन से चंचलता में भी एक ही कानी आवृत्ता रेणों मन
की अवस्था बदलणों वाजे है।

(२) प्र०—हे भगवन् ! कहाँ तक चित्त की हालत तबदीली हो
सकती है और इस दृढ़ता की हालत में चित्त कैसे
आता है ?

उ०—हे मौन्य ! फिर जब वह एकाग्रता ज्ञान की हालत
बढ़ होने लगती है, तब ज्ञान के सभी अनुभव के बीच
में हमारे विचार आने नहीं पाते, यही चित्त की हालत
जब दृढ़ हो जाती है, तब निर्बीज समाधि परमयाग
(अपनी अमर्ला हालत को) चित्त पा लेता है फिर
चित्त वहाँ से नहीं हट सकता । जब तक चित्त अपनी
अमर्ला हालत नहीं पा लेता है अर्थात् निर्बीज समाधि
नहीं होती है, तब तक फिर उत्तर आने की निर्वलता
रहा करती है।

(निर्दिष्ट) वरवर एक ही तरह के विचार उठने रहना और

उनके बीच में हमारे विचारों का न आना ही चित्त की एकाग्रता की हालत नहीं जाती है। यह एकाग्रता की हालत समय के अधिक बढ़ने से आती है और एकाग्रता की हालत अधिक बढ़ने से सप्रज्ञान (विद्वेक ग्याति) की हालत होती है। विद्वेक ग्याति बढ़-रह जाने से निर्बीज हालत हो जाती है और न योगी कृतकृत्य हो जाता है।

—०—०—

मू०—एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणादभ्याः परि-
णामा व्याख्याताः ॥१३॥

२—यह ही हमें एक चीज का सम्भाव नाम, न अभ्यास

(५) प्र०—यथा यो हालते चित्तं त्रीं वदन्ती है यथा त्रीं वदन्ती की वदन्ती है।

३०—इसी तरह हमारे चित्त और चित्त के ही वाली सब चीजें अपनी अपनी हालत में हैं।
हैं अभ्यास जो यथा तीव्रता है वह ही
की तबदीली (परिणाम) ही है।

सू०—शान्तोदितोऽव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्म १४॥

२—माग हरफेर में भी जणी रो हेरफेर नी रहे' बां ही स्वभाववाजे है ।

(५) प्र०—ये हालते किस की तबदील होती हैं ?

उ०—जो अन्न होने वालो, होगई, और हो रही है, हालत में अपनी खासिगत बिना छोडे ही अपनी हालत में बदलता रहता है । वही खास हालत धर्मी के नाम से कही जाती है और उसकी हालते उसका धर्म फलती हैं । इसी खास हालत की प्रकृति दृश्य आदि नाम से भी कहते हैं । यह सम्पूर्ण जगत इसी की हालते हैं, और इसकी कितनी हालते हो सकती हैं, यह कोई नहीं जान सकता । क्योंकि इसकी कोई दृष्ट नहीं है ।

सू०—कामाऽन्यत्वं परिधामाऽन्यत्वे हेतुः ॥१५॥

२—अ ॥ स्वभाव में हेरफेर पणो तो तरंगों की लमड़ेर शू है ।

(५) प्र०—कह खास हालत तबदील नहीं होकर भी अनेक हालत तबदील कैसे करती हैं अर्थात् एक धर्मी के अनेक धर्मी कैसे होते हैं ?

उ०—गिनमिने की तबदीली (कामान्यत्र) ही हालत तबदीली का कारण है अर्थात् यद्यपि खास हालत

एक ही है, तो भी उसमें मिलमिले की तबदीली है
 उन्हें ही हालत तबदीली कहते हैं। जैसे मिट्टी है वह
 मिट्टी ही है, उसका एक वर्तन बनाने से वह मिट्टी
 वर्तन की हालत में तबदील होकर भी अपनी मिट्टी
 की हालत में रहती ही है फिर उस वर्तन को पक्वान
 पर वह पक्के वर्तन की हालत में होकर भी है मिट्टी
 ही। फिर वह फूट कर गंटी बनाने की तबदीली हालत
 में हो जाती है। यही मिलमिले में (द्रव्य में) तबदीली
 (मिट्टी, कच्चा वर्तन, पक्का वर्तन और तबदीली) का द्रव्य
 में तबदीली कही जाती है और जो हालत को तबदीली
 होने पर भी वह है मिट्टी ही, इसका मतलब यह है
 कि एक कोई ऐसी वस्तु है कि उस में अनन्त (द्रव्यमय)
 हालतें तबदील कर लेने की ताकत है और ताकत
 पहले ही गया हो रहा और हागा वह तुल्य और
 नहीं, उसी एक वस्तु की हालत तबदीली का कारण है।
 उसे ही अव्यक्त मायाप्राप्ति प्रधान आदि-अन्त-अन्त
 में लोग ब्रह्मा कहते हैं।

सू०—परिणामत्रयसंश्रमादतीतानागत-

ज्ञानम् ॥१६॥

और ये देखने वाले रग शब्द आदि एक ही वस्तु की केवल हालत तबदील हो रही है कि जो ऊँचा योग का अधिकारी नहीं होने से इस दीखने वाले शक्ति के उलट फेर को ही बड़ी बात मानता है। उसको योग में विश्वास, बिना प्रत्यक्ष के नहीं हो सकता और बिना विश्वास आगे बढ़ नहीं सकता। इस लिये ऐसे अधिकारी के लिये मैं अब प्रश्न करता हूँ कि आपने जो आज्ञा की थी कि धारणादि तीनों मयम की सिद्धि हो जाने से सच्चा अनुभव (विवेक ग्याति) मिलता है और उस संयम को सीढ़ी दर सीढ़ी बढ़ाना चाहिये और सब से मयम की ऊँची सीढ़ी विवेक ग्याति नाम का सच्चा अनुभव है। परन्तु किमी की यह इच्छा हो कि जाँ बात होने वाली है प्रथम हो गई, उसे जानू तो उसे क्या करना चाहिये अर्थात् मद अधिकारी इन्हीं तबदील होने वाली बातों की इच्छा किया करते हैं। ऐसा मनुष्य अष्टाङ्ग योग साधन कर अगर यह इच्छा करे कि मुझे होने वाली बात और हाँगई उसकी मालूम हो जाय तो याग में उसकी यह इच्छा कैसे पूरी हो सकती है ?

—इस मन्त्र । प्रत्यक्ष वस्तु की तीन तरह की तबदीली होती है । पहली हालत को पहली तबदीली और पहली हालत को बदल कर दूसरी में आना उसे ही ही भर्त्स परिणाम भी कहते हैं । फिर उस दूसरी हालत में कुछ करने की भी प्रतीति होना लायक परिणाम कहते हैं । फिर तीसरी हालत में जाना

अवस्था परिणाम कहाना है। उन तीनों हालतों में समय करने में होने वाली और जो हो गई, वह बात मालूम हो जाती है।

सू०—शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्स-
ङ्गरस्तत्प्रविभागसंश्रमात् सर्वमृतकृत-
ज्ञानम् ॥१७॥

०—बोली बोली में अर्थ में बोली बोली में विचार मिला
यवा क' ज्ये दीखे । पण अर्णा में न्याग न्याग में उँटा विचार
पर तो सर्वों में बोली समझा लाग जाय ।

(५) प्र०—कोई यात्री चाहे कि मुझे पद पछी तथा गद गद
की भाषा की समझ पढ़ने लग तो उसे क्या करना
चाहिये ?

०—शब्द शब्द का अर्थ और उसका ज्ञान गद गद में
मिले लिये मालूम पाते हैं। उन तीनों में मालूम मालूम
समय करने में गद जीवों की बोली समझ में आ
जाती है ?

सू०—संस्कारसाक्षात्करणात् पूर्वजाति- ज्ञानम् ॥१८॥

०—अन्तःकरण में ऊँडो विचार करे तो पे'ली में जन्म में
ग्यवर पड़ जाय ।

(१) प्र०—पूर्व जन्म का ज्ञान कैसे होता है—इस जन्म में पहले
में कौन और क्या था यह कैसे मालूम होता है ?

उ०—संस्कार (इच्छा) में संयम करने में पूर्व जन्म का
ज्ञान हो जाता है ।

सू०—प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥१९॥

०—पराया में विचार में ऊँडो विचार करे तो वर्णा में मत
क्या में ग्यवर पड़ जाय ।

(१) प्र०—मिमी दूसरे के मन की बात कैसे मालूम होती है ?

उ०—उसके चित्त में संयम करने में उस में क्या क्या भाव
हैं यह मालूम हो जाता है ।

सू०—न च तत्साऽऽत्मनः तस्याऽविपर्य-
भूतत्वात् ॥२०॥

२—पण अणी शैं आगे री खबर नी पड़े । क्यू न जगी पे
उँठा विचार करे वर्णी री हीज खबर पड़े हैं ।

(५) प्र०—हे भगवन् । यो पराये मन की बात जानन पे कि-
यो भी मालूम हो जाता है कि नहीं कि इनके मन में
यह बात है और वह इस प्रकार की है । जैसे किसी
के चित्त में प्रीति है यह तो मालूम होना । पर किसी में
प्रीति है और जिसमें प्रीति है यह वस्तु कैसी है और
उसकी प्रीति इसमें है कि नहीं यह भी क्या इसी निमित्त
में समय करने में ज्ञान हो जाता है या नाह अथ
उपाय है ?

उ०—हे सौम्य । पराये चित्त में समय करने में यह ()
की हालत की मालूम होती है कि इसमें बात ()
आदि क्या है । फिर इस बात में समय करने में
यह मालूम पाने की है कि जिसमें ये बात पड़े । कि
उसमें समय करने में मालूम पाने की है । यह बात
है । यो आगे से आगे समय चलाना पाने की है । यह
सीधी होकर मालूम नहीं पानी ।

सू०—कायरूप संयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे
चक्षुःप्रकाशाऽसंप्रयोगेऽन्तर्द्धानम् ॥२१॥

२—अलोप वहेवा रो उपाय यो है के शरीर रा रंग में ऊँठो
विचार कर रंग ने छिपाय लेवे, जगी शूँ दूमरा ने आपणो रंग
नी दीये ।

(१) प०—कोई ग्राह चाहे कि मुझे कोई देख न सके अर्थात्
अन्तर्धान हो जाऊँ तो उसे क्या करना चाहिये ?

उ०—अपने शरीर के रंग में संयम करने से वह रंग छिप
जाता है तब दूसरे की आँख में वह रंग आता ही
नहीं । इसमें योगी को कोई देख नहीं सकता । जो ही
शब्द में संयम करने से उसकी बोली कोई नहीं सुन
सकता, उर्मी प्रकार सब तरह से वह छिप सकता है ।

सू०—मोपक्रमं निरूपक्रमं च कर्म तत्संयमाद-
परान्तज्ञानमग्निष्टेभ्यो वा ॥२२॥

२—शरीर दृष्टि की व्यवस्था पावणी कहे तो कर्म की धार्मी, ने
अपनी ज्ञान प ऊँठो विचार कर अथवा उपद्रवाँ में विचार कर ।

३—मर्ने की ऐसे मादम हो सकती है ?

उ०—हर एक के कर्म दो तरह के होते हैं—कुछ कर्म तो बाहर आने के लिये (फल देने को) तैयार होते हैं अर्थात् जल्दी फल भुगताने हैं और कुछ क्लिप्त में। इन दोनों प्रकार के कर्मों में समय करने में मृत्यु या जान होता है अर्थात् विपरीत हालत में भी मृत्यु की मालूम हो जाती है।

मृ०—मित्रादिषु वलानि ॥२३॥

उ०—मोह, दया, ने हर्ष अर्थात् तीनों में उद्योग विचार करना ही वही है तीनों ही आधीन हो जाय।

(५) प्र०—कौन यह चाहे कि मैं किसी विरोधी में मित्रता कर दूँ वा मुझ में शत्रु भी मित्रता कर ता उसे दया करना चाहिये ?

उ०—मैत्री, करुणा, मुक्तिदि और यम नियम आदि पहले होते थे उनमें से जिसमें समय पर नहीं था इन योगों प्राप्त कर लेता है। मित्रता ही भावना से मित्रता तावत योगों में आ जाती है, जिससे अपने ही वर चाहे जिससे चाहे सो मित्रता कर सकता है। वही करुणादि सब समझ लेना चाहिये।

सू०—बलेषु हरितबलादीनि ॥२४॥

२—बल पे ऊँडो विचार करे तो चावे जतरो (हाथी गो) यह प्राय जाय ।

(५) प्र०—कोइ चाहे कि मेरे मे हाथी के समान बल पराक्रम हा
तो उमे क्या करना चाहिये ?

उ०—हाथी के बल मे संयम करने मे हाथी का बल योगी
मे प्राजाता है । यो ही जिसके बल की इच्छा हो उसी
के बल मे संयम करने से उमी का बल प्राप्त हो जाता है ।

सू०—प्रवृत्त्याऽऽलोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहित- विप्रकृष्टज्ञानम् ॥२५॥

२—मेरी री, नजीक री, ने आकरा री चीजाँ देखनी चा
ने मायना उताग पे ऊँडो विचार कर ।

(१) प्र०—बल आगीर, दूर अथवा द्विपी हडे (गदी हडे) यह
का ज्ञान कैस जाता है ?

उ०—गाइ मल्लि जो मायिक प्रकाश पल्ले कहा था, उगा
संयत करने से सूक्ष्म या आट मे आटे हडे और दूर
मे वस्तु दोस्रो लग जाती है अर्थात् अंतर प्रकाश
मे वस्तु नजद मल्लि आदि दोस्रो लगते है ।

नोट—एक १ म्ब २३ मे कवी सो विगोका है, यह इन्ध म
तरंग मे जितनी है ।

सू०—भुवनज्ञानं सूर्ये त्वयि ॥२६॥

०—सूरज पे ऊँहा विचार कर ना नान ही ल'क नागन
लाग जाय ।

(५) प्र०—हे भगवन ' भुवन नरक अहि ल'क की मालूम कर
पहता है ?

०—सूर्यद्वारा मे समयम करन मे मय ल'क नागन ल'क नागन

सू०—चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥२७॥

०—चन्द्रमा मे ऊँहा विचार करन मे मय ल'क नागन ल'क नागन
लाग जाय ।

(५) प्र०—तार आवाण मे रिम वस मे ल'क नागन ल'क नागन

०—चन्द्रमा मे समयम करन मे मय ल'क नागन ल'क नागन
लाग जाय ।

सू०—ध्रुवे तल्लतिज्ञानम् ॥२८॥

सू०—नाभिचक्रे कायव्यूहाशनम् ॥२६॥

२—हैठी री गोलाई पे ऊँडो विचार करवा शू शरीर री बनावट री खबर पडे ।

(५) प्र०—शरीर की बनावट की कैसे मालूम होती है ?

उ०—नाभि चक्र मे मगम करने से शरीर रचना का ज्ञान हो जाता है ।

सू०—कंठकूपे जुत्पिपासानिवृत्तिः ॥३०॥

२—रठ ग गारा प ऊँडो विचार करवा शू भूय गण न लप ।

(५) प्र०—भूय पिपासा न लग कर शरीर का धल और तज त ॥ रठ, यन् इच्छा हो तो क्या करना चाहिये ?

— पाते लाग न मुधा पिपासा ।

अतुलित बल तनु नेज प्रकाशा ॥”

— रठ ६ गट्ट म समयम करने म स्थिरता (ब्रह्मा) होती है ।

सू०—कर्मनाश्यां स्थैर्यम् ॥३१॥

८०—अस नाम की नाडी-लो कठ ४ तीच है इसमें नयन करने में स्थिरता (दृढता) पाता है ।

सू०—मूर्च्छज्योतिषि सिद्धिदर्शनम् ॥३२॥

८—साक्षात् उजाग में उठा जितना दृष्ट हो प्रकट साक्षात् दर्शन के साथ ।

(५) प्र० जो मित्र लग्न है व प्रमद राश में अर्थात् जो राश की सिद्धि वाला वाद है म नीच है नही है ।

८० कपाल (सरतः) ३ प्रकाश में स्पष्ट दर्शन व उजाग में पुरुष के दर्शन प्राप्त लग्न है अर्थात् प्रमद राश में सिद्ध दीर्घ स्वतः है अर्थात् व नीच है नही है मिलता है) ।

सू०—प्रतिभाद्धा सर्वम् ॥३३॥

मान्म हो अथवा कहाँ समय करने से क्या फल (मिद्धि) होता है। यह कैसे मालूम होजाय ?

उ०—प्रातिभ नाम का ज्ञान जो साधक को स्वयं ही होता है उस में समय करने से सब ऊपर कहे ज्ञान (मिद्धि) में जाते हैं। प्रातिभ नाम एक तारे का है, जो स्वयं ही गीता की गीतना है। यह मालूम होजाता है कि प्रभुक्त समय में प्रभुक्त मिद्धि होती है।

म०—दृष्टये चित्तसंयित् ॥३४॥

३-दृष्टये (दृष्ट्य में) चित्तसंयित् (चित्त संयमित) करने से मन दीरगा होता है।

प्र०—'चित्तसंयित्' का अर्थ है चित्त की स्थिति को नियंत्रित करना है। चित्त की स्थिति को नियंत्रित करने से चित्त ही अर्थात् मन ही दीरगा होता है।

उ०—चित्तसंयित् करने से चित्त का ज्ञान होता है।

सू०—सत्त्वपुरुषयोरत्यन्ताऽसंकीर्णयोः

प्रत्ययाऽविशेषो भोगः परार्थत्वात्स्वार्थ-
संयमात्पुरुषज्ञानम् ॥३५॥

२—मन तथा मन ने दीये ज्यों, विलकुल नी मिल । पग
या गान नी समभावा जे, ही दु ग्य सुग्य भागणा पटे ह । पग
वणी ने भोगणा पडे अणी प ऊँले विचार कर ना आत्म ज्ञान
का जाय ।

(५) प्र०—पुरुष (आत्मा) का ज्ञान कैसे होता है अथवा जिन
ज्ञान में क्या होता है ?

सू०—ततः प्रातिभश्रावणवेदनाऽऽदर्शाश्वाद-
वार्ता जायन्ते ॥३६॥

—'आत्म ज्ञान को' जड़ी उपज, शुण्णो, अटक्णो,
निलो मत्त ने मुग्धा ई पणा वत्ता वत्ता आवा लागे है ।

—'हे भक्तान ! यो विलक्षण आत्मज्ञान होने पर फिर
क्या होगा है ?

—तब ऐसा आत्मज्ञान होने लगता है तब अर्थात् साधन
म (संग्रह भाग ३) संग्रह करने से बिना ही पड़े
जिसे सब विद्या भवन आजाती है और हर नजदीक
की और आजीविक आगे मुक्तता, वृत्ता, ईश्वरता, वृत्ता
आदि सब प्राप्त होता है, अर्थात् उसके मन और
जीवन की सब बातें पूरी होती जाती हैं ।

निद्रिये भी प्राप्त होजाती है और फिर आत्म ज्ञान भी हमी स्वार्थ मध्य में हो जाता है ?

उ०—जिसका चित्त आत्मान्तर होने लगता है उस योगी के तो ये निद्रिये विप्र है । क्योंकि बीच में ण्ड पर आत्म-कार होने में (रकने में) उस चित्त का हिला हरी है । और जिसका चित्त चंचल है उसका चित्त के मन प्राग्वह में निद्रिये ही है कि उसे ज्ञान में याग में निद्रिये हो जाता है ।

— — —

सू०—बंधवारणशेषिल्यात्प्रचारमन्दनाच्च

चित्तरय परशूरीशवेशः ॥३८॥

सू०—ततः प्रातिभश्रावणवेदनाऽऽदर्शस्वाद-
वार्ता जायन्ते ॥३६॥

२—'मैं आत्म ज्ञान वही' जदी उपज, गुणणों, अटकणों, दीन्यणों स्वाद, ने सुगन्ध, ई घणा वत्ता नत्ता आना लागे हे ।

(२) प्र६—हे भगवन ! गो विलक्षण आत्मज्ञान होने पर फिर क्या होता है ?

उ०—जब ऐसा आत्मज्ञान होने लगता है तब अर्थात् सग्न में (मग्न इस भाव में) संयम करने से बिना ही पड़ लिंगें सब प्रिया स्वतः आजाती है और दूर नजदीक की और प्लौतिक बातें मनना, बुना, दीन्यना, चमना और सुँपना प्राप्त होता है, अर्थात् उसके मन और इन्द्रियों की गंठ टोक कहीं नहीं रहती ।

(न७) पुरुष ज्ञान के पूर्व प्रातिभ पाद १ सूत्र ३६ में कहा सो और १३० में कहीं सो प्राप्त होती है । इसे ही विषयवर्ती प्रतीति स्वी है १३५ में १३६ उत्कृष्ट है ।

सू०—ने समाधानूपमर्गा व्युत्थाने मिद्वयः॥३७॥

मिद्विधे भी प्राप्त होजाती है और फिर आत्म ज्ञान भी इसी स्वार्थ समय में हो जाता है ?

उ०—जिसका चित्त आत्मान्तर होने लगता है उस योगी के तो ये मिद्विधे विप्र हैं । क्योंकि बीच में ण्ड कर आत्मा-कार होने में (स्कन्ध में) उस चित्त का हिला देती है और जिसका चित्त चंचल है, उसके लिये ये मन्त्र प्राप्त करने में मिद्विधे ही है कि उसे इन में योग में मिद्विधे पहुँच हो जाता है ।

सू०—बंधकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च
चित्तरय परशरीरावेशः ॥३८॥

अर्थात् चित्त सर्व व्यापक होने पर भी कर्म बधनो से एक ही शरीर में बधा रहता है। तब समाधि से वे कर्मबध खुल जाते हैं और आने जाने का गमता मालूम हो जाता है, तब पर शरीर में प्रवेश करना सुगम हो जाता है (ये दोनों बातें समाधि से होती हैं)

—०३३३०—

सू०—उदानजयाज्जलपंककंटकादिष्वसंग उत्क्रांतिश्च ॥३६॥

२- यु मा ता ग वायरा ने आनीत कर लेवे तो पाणी काश (कटाव) और ताँदा पे आग चाल शक। मन बड़े जठे शरीर में चले पगे जाय।

(५) सू०—पानी पर चलना किमी कंटक आदि पर भार बिना स्थि ही उस पर होकर निराल जाना, गहज में शरीर को उदानजया त्यागना कैसे जाता है ?

—समानजयाज्ज्वलनम् ॥४०॥

—यूँ हँठी ग वायरा ने आधीन कर ले तो नेज धये ।

०—योगी परम तेजस्वी कैसे होता है ?

०—समान नाम का वायु जो नाभि में रहता है उसे आधीन कर लेने से योगी अग्नि क समान तेजस्वी हो जाता है ।

—श्रोत्राऽऽवाशयोः सर्वन्थ संयसाद्विच्यं
श्रोत्रम् ॥४१॥

सू०—कायऽऽकाशयोः सम्बन्ध संयमात् लघु
तूलसमापत्तेष्वाकाशगमनम् ॥४२॥

२—जरीर, ने आकाश से मिलावट पे विचार करे तो फोरा
है ग नार मरीचो वग ने आकाश में उड शके ।

(१) ५० आकाश में उडना चाहे तो किम प्रकार उा सकता है ?

३० जरीर और आकाश के गंध में मयम करने से
अपना हलक (तूल) पदार्थ में सयम करने से आकाश
में उड सकता है अर्थात् हलका और गारीक हा
सकता है ।

—०—

सू०—यद्विरकल्पितावृत्तिर्महाविदेहा ततः
प्रकाशावगणक्षयः ॥४३॥

मे बना कर उसी में ऐसा भाव कर लेवे और वही भाव दृढ़ हो जाय तो उसे मन्त्र विद्वद्धारणा कहते हैं और इस धारणा में चित्त के शुभाशुभ (भय द्रु) परदे भी हट जाते हैं प्रार्थना याज्ञ विना ही स्वयम् के वृत्ति हो जाने से महाविद्वद्धारणा होती है और इस में वृद्धि (चित्त) के आवरण (परदे) हट जाते हैं ।

सृ०-स्थूलस्वरूपसूक्ष्माऽन्ध्या
भूतजयः ॥४४॥

२—है सब चीजाँ कतरी तो सही चीजों में बगल है । जो
बर्गों में सही होने की फेर बगल में सही में बर्गों में सही
र दाखले हैं । है प ऊँछों विचार कर ताई भव चानो । भा
आर्थीन वह जाय ।

(५) प्र०—आकाश आदि पञ्च महाभूत (पाञ्चान ३। १।
आर्धान वेस होते हैं ०

पाँचों का स्वरूप शब्दादि पाँचों तन्मात्रा में है इन में तीनों गुण (सत्व रज तम) व्यापक हैं और ये सब पुरुष के लिये हैं, जो क्रम से सयम बढ़ता जायगा लो लो ही ये भूत आधीन होते जायेंगे ।

— — —

सू०—ततोऽग्निमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मा-
नभिवातश्च ॥४५॥

२—अग्नी शी आठ ही मिश्रिगों मिले ने शरीर का गुण को, ने डे चार्ण चर्णी ने दु ग नी देवे ।

(१) प्र०—अग्निमा (महा सत्त्व होना) अग्निमा (बहुत भारी होना) राग्निमा (बहुत हल्का होना) महिमा (अत्यन्त बढ़ जाना) प्राप्ति (चाह जिसे पा लेना) प्राकाम्य (डरछा पूरी हो जाना) अशित्य (पाओ भूत और उनमें बने प्राणिया का क्या कर लेना) अशित्य (गाना और विगाड मफना) दय काम अशित्य (सत्य सफल होना) आदि मिश्रित इन मिश्रणी है ?

३—उक्त का अनुगम क्रम में भूत जय होने से प्रथम ने अग्निमान आठ मिश्रित प्राप्ति होती है और इन प्राप्ति में अग्नी की कल्पित योगी के नली रहनी और काय सत्व में प्राप्त हो जाती है ।

— —

मोक्ष है उसने क्या मिला हुआ है और क्यों है
 यह कि जैसे ज्ञाना यही ग्रहण कहाता है उसका स्वरूप
 (ज्ञाने का क्रम) प्याय है और यह ग्रहता के लिए
 ही देखतो है । उस ग्रहता में तीनों गुण मिले है और
 तीनों गुण मुख्य के नास्ते है, यो क्रम से ग्रहण स्वरूप
 अस्मिता अन्यय और अर्थ तत्ता में सम्यग करने में
 उन्निद्रा आगत हो जाती है । या ही पाँचों इन्द्रियों का
 समग्रता तात्परे ।

गृ०—ततो मनोजवित्वं विकरणाभावः प्रधान-
 जयश्च ॥४८॥

अर्थान् हर एक चीज जड चेतन पर दृष्टमन कर
सकता है ।

सू०—सत्त्वपुरुषान्यता ख्यातिमात्रस्य सर्व-
भावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ॥४६॥

२—देवे ज्यों, नै दीखे ज्यों न्याय जणाय जावा प्र सबों में
आधार, नै सर्वों नै जाणवा वालों जेष्ठाय जाय ।

(५) प्र०—यो मन का बंग प्राप्त होने पर और सब जान लेने पर
भी जड़ योगी एक तरफ जायना या दृग्गता तो उर
हो की मालुम पड़ेगी । परन्तु ऐसा क्या उपाय है कि
हम के आवेदन के मुश्किलों की सब जगह से हम
हो साथ जान सकें ?

०—प्रकृति और पुरुष (नष्ट और अश्व) ३ अलग अलग भा-
वों में हैं (अष्टाश्रय का विवेक होने लगता है)
सम्पूर्ण विद्यावार और सर्वज्ञ योगी हैं ही ज्ञान है ।

सू०—तद्वैराग्यादपि दोषबीजजये वैदल्पम् ॥५०॥

उ०—इस में भी वैराग्य होने में (इस में भी तृष्णा न रहने में) ही दोष (दुःख) बीज (अविद्या अज्ञान) ज्ञाप हो जाता है और तब ही पुरुष निःकालस हो जाता है यही (तेवन्त) स्वरूपावस्थान है। इसे ही मोक्ष समझना चाहिये अर्थात् अपने में सब संसार को (प्रकृति को) त्यागना निवेदय्याति है और इस देश में भी पुरुष का निःकालस संगोग रहित होना ही परम भाग है।

म०—स्थान्गुपनिषद्भगो मङ्गस्मयाऽकरणं पुनर-
निष्टप्रमङ्गात् ॥५१॥

(१९५)

आ लगती है । इसी से इन्हे विघ्न कहा है (फिर पीछे
मग्न दुःखों में पड़ जाता है) और एक यह भी भाव-
गानी साथ ही में रखनी चाहिये कि मित्रियों व त्यागने
का घमंड भी न आ जाय । क्योंकि इनका त्यागन का
घमंड भी वैसा ही हानिकारक है जैसा इनका मग्न ।

सू०—क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजम्
ज्ञानम् ॥५२॥

२—छाँटी में छाँटी चाल न छाँटी में छाँटी जान पड़ता
व्यचार धरवा में सोची समझ आवे है ।

५) प्र०—हे भगवन् ! यह कैसे हो सकता है । प्रत्यक्ष मित्रों
को त्यागना ही बलित और फिर फिर त्यागन का
अभिमान न जाना इसमें भी बलित । । ऐसा जान
में क्या करना चाहिये ?

जदी पे ली माफिक एकतत्व रा अभ्यास करता करता समापत्ति तक पो'च जाय, ने वणी मे भी निर्विकार समापत्ति सूक्ष्मविचार भी आत्मा रे दृश्य व्हे'ने दृष्टा व्हेवा रो दावो छोडवा लाग जाय, जदी जाणणो के अबे निर्विचारा समापत्ति री स्पष्टता व्हे'गई है। अणी हालत मे अबे जाणे आत्मा हीज स्वय आप दृष्टापण ने नी छोडवा पे दृढ़ व्हे'गयो व्हे' ज्युँ व्हे'जाय है, अथवा जो तरंग दृष्टा व्हेवा ने आवे वा ही दृश्य वण जाय, जाणे काळीनाग रा माथा पे भगवान् रो नृत्य व्हे'रियो है। चाली, काटवा ने फण उठावे उठावे जतरे तो भगवान् वणी पे ही चढ'ग थका लावे। श्री राधिकाजी रो प्रेम कृष्ण मे, ने श्रीकृष्ण रो प्रेम राधिकाजी मे व्हेवा पे भी अबे श्री राधिकाजी रो मान, ने श्रीकृष्ण भगवान् रो मनावणो अध्यात्म प्रसाद वाजे है। अठा पे ली री मे रुईक रुईक कोशिश रे'ती ही के दृष्टा मे सब है, पण अध्यात्मप्रसाद व्हेवा पे कोशिश ही छूट जाय, आपो आप ही दृष्टा मे पण व्हेवा लाग जाय। अणी ने के'वे है, निर्विचार री स्पष्टता और आत्मा (सम्बन्धी अध्यात्म) री कृपा वा प्रसाद वा प्रसन्नता।

४—जदी चार ही सवितका निर्वितका ने सविचारा निर्विचारा मर्जाज है नदी निर्वाज कंकर ने कर्षा व्ही ? जदी

निश्चय योगी प्राप्त कर लेता है, तब उसे भी भीतरी अनुभव मिलने लगता है। इसी को अध्यात्म प्रसाद कहते हैं। अर्थात् निश्चित निर्विचार मे अध्यात्म प्रसाद मिलता है।

(ॐ) नेग मेवानुक्तगार्थमदमज्ञानज तम

नाशयान्यात्मभावस्थो जानदीपेन भाव्यता ॥

उ०—यह सब विज्ञो ने तारनेवाला जान है। हमोंने इसे तारक कहते हैं इसी से सब जाना जाता है इसलिए हमने सर्व विषय भी कहते हैं। सब की तन्त्रीली भी इसी से मालुम होती है इसी से इसे सर्वथा विषय भी कहा है। एकदम (बिनाक्रम) सब मालुम होने से इस अक्रम भी कहते हैं। यह ज्ञान विवेक पदक होने से इसे विवेकज ज्ञान भी कहा है अर्थात् साधक अर्थात् जी सुध्राफिर सम्पूर्ण दृश्य (प्रकृति) का हमसे ज्ञान हो जाता है और इसी से वह ज्ञानी प्रकृति ४ विज्ञो से नहीं फसता यही पूर्ण ज्ञान है।

— — —

०—सत्त्वपुरुषयोः शुद्धितारये कैवल्यमिति ॥५५॥

२—जहाँ विचार अर्थात् निर्मल ठ ' जाय व विज्ञा २ ॥
 १ दृश्यवावालो निर्मल स्यागे व्हे' जाय या ही नता २ ॥
 अर्थात् विचार की निर्मलता ही मता सुख १ पा २ ॥
 १ मेल रो अर्थात् ही रणो पाव ।

विभूतिये होकर होवे वा विना ही विभूतिये होवे
 अर्थात् यह कोई जरूरी नहीं है कि इस प्रकार का
 विवेकज ज्ञान होने बाद ही मोक्ष होता है मोक्ष (कैवल्य)
 तो सीर्फ सत्व (दृश्य) और पुरुष (दृष्टा) की एक मी
 शुद्धि अर्थात् बिलकुल पृथक्ता मे ही है, फिर वह चाहे
 जिस प्रकार से होवे बस यही परम योग है। पुरुष
 और प्रकृति का निखालस कैवल्य होना जो कि अयन्न
 स्वाभाविक ही है।



योगसूत्र

अथ चतुर्थ (कैवल्य) पाद

सू०—जन्मौषधिमन्त्र तपः समाधिजाः सिद्धयः ॥ १॥

२—जन्म मूँ, औषध मूँ, जप मूँ, तपस्वा मूँ ने मूँ
विचार करवा मूँ सिद्धियाँ मूँ हैं अर्थात् मन का दह (मन्त्र)
धधे हैं हेर पोर मूँ हैं ।

(५) प्र०—हे भगवन ! आपन समय से अनक प्रकार की सिद्धि
आज्ञा करी । अब यह आज्ञा करीजिये कि समय से
मिवाय और भी कोई सिद्धिये जान का मत है या नहीं
अर्थात् सिद्धिये समय से जाती है या और की बात
प्रकार है । सिद्धिये कल कितनी प्रकार की जाती है न
पुरुष की समान गति ही परम सिद्धि आपने जान
करायी । अब यह आज्ञा करीजिये कि निरि स्वप्न से
(ध्यान से) ही जाती है या इससे और की प्रकार है ।

३८—पौच प्रकार से सिद्धिये जाती है जन्म, औषध, तपः
तप और समाधि (ध्यान) से प्राप्त सिद्धि से
जन्म से ही सिद्धि (जन्म तत्परीतो) जान है
विरागे का औषध से दिव्या का मत है तप से
पित्त का पापने धने शुद्धि का मत है समाधि से

सिद्धि (हालत तबदीली) मिलती है । इन पाँचों में
मयम की ही सिद्धि मुख्य है ।

— — —

सू०—जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥२॥

२—‘गो हेरफेर स्वाभाविक हो ग्ले’ है अर्थात् कोई कछा शू
नवी बात नी आय जाय है, पण उयू पाणी गो स्वभाव ऊँडो ने
बासदी गो ऊँडो हें, गू ही प्रकृति रा भी या स्वभाव हीज हे ।

(१) प्र०—हे भगवन् ! आपने प्रथम कहा था कि शरीर और
इन्द्रियों की हालत तबदीली (परिणाम) एक हालत
में हमारी हालत में हो जाना ही सिद्धिये है । अब यह
हालत तबदीली किससे, क्यों होती है अथवा इन पाँचों
कारणों में क्यों होती है, सा कृपा कर कहिये ?

(नोट) ये सिद्धियें क्या हैं (क्या वस्तु हैं) इंग नमर प्रश्न १
अन्तर में प्रथम सूत्र है ।

मिद्धिये कहाती हैं और यह प्रकृति व्यापक होने से प्रकृति में ही होती है ।

— — —

सू०—निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु
ततः क्षेत्रियवत् ॥३॥

३—कणों कीज २ उगवाने गेला करद ह । ज्य मन से प्रकृति में पांच ही जाती ना) अर्थात् स्वभाव से गन्ता करद ह ।

(५) प्र०—एक हालत में दूसरी हालत में मरीर मित्रिये तत्त्वों
विषयी कारण के बिना ही होती है ना या ही प्रकृति
कारण ही स्वयं ही या तबहीली एक ही स्वभाव से
जती होती अथवा यह परिणाम दिव निमित्त से
होता है ?

आर से वह रही है। सिर्फ धर्म अधर्म के निमित्त से (रोक बाध ले) वैसी ही प्रकार की तबदीली हो जाती है अर्थात् प्रकृति का कोई कारण नहीं होने पर भी चित्त के शुभाशुभ में उसकी रोक और पवाह होता रहता है जैसे किसान से खेती होती है। यद्यपि किसान नया कुछ नहीं करता।

मृ०—निर्माणाचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥४॥

२—मृपणो मन रा बळ रे गेलो करे है, मृपणा शू मन बागें है।

(१) प्र०—हे भगवन् ! जब चित्त के शुभाशुभ (भलेबुरे) के निमित्त के अनुसार ही में प्रकृति का प्रवाह (तबदीली) होने लगता है, तो ये चित्त ही पृथक् पृथक् किस निमित्त में होते हैं, अर्थात् इन चित्त रूपों में जो प्रकृति बहने लगी उसका क्या कारण है। अर्थात् शरीर इन्द्रिय चित्त के कारण में बनती है, तो चित्त किस कारण में बनते हैं।

३—मित्ति अह (मै) मात्र में ही चित्त बनते हैं, जो कि पञ्च सखाग के नाम से कहा गया है अर्थात् प्रकृति पुरुष (चन्द्रमन) व सखाग में ही पृथक् पृथक् चित्त बनते हैं और यह सखाग अस्मिता में बनता है और अस्मिता इन्द्रिय कृति में बनती है प्रियरेय कृति प्रकृति के रजा-

उ०—हे मौम्य ! हर एक तबदीली के साथ चित्त वह एक ही रहता है और उस एक ही चित्त से अनेको शरीर इन्द्रियो मे अनेक चित्त काम किया करते है, जैसे हमारे बाल यौवन और जरा मे तथा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति मे एक ही चित्त से अनेक चित्तो मे काम लिया है । गो ही अन्य देहो मे भी समझना ।

नोट—देहिनोम्भिन यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।

तथा देहान्तरपाप्ति भीरुस्तत्र न मुच्यति ॥२॥१३॥

प्रगति, गामगुत्ति अर्थान समष्टि चित्त की व्यष्टि ही प्रगति और उसकी प्रगुत्ति वृत्ति कहाती है ।

स०—तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥६॥

२—ध्यानरा (ऊँटा विचार रा) वह बाका मन मे कर्म भेका (एहटा) ना हो' है ।

(५) प्र० हे भाग्यन ! उन अनेक देहान्तरों मे जो एक ही मुख्य चित्त काम लेता है, यह मुख्य चित्त भी एक ही तरह का होता है या मुख्यचित्त भी तरह तरह के होते है अर्थान निर्माण चित्त सब एक से ही होते है या उन मे कुछ भेद होता है ?

करता है। योगी के सिवाय और सब के कर्म या तो पाप के बुरे, या पुण्य के अच्छे वा पाप पुण्य के अच्छे बुरे मिले होते हैं ।

“अनिष्टमिष्टमिश्रञ्च त्रिविद्यं कर्मणः फलम्
भवत्यन्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां फलितं
नैव किञ्चित्करोमीति युक्तं मन्येत तत्त्ववित् ।

परमं भ्रष्टं स्पृशन् जिघ्रन् नशन्न गच्छन् स्वपन्न क्षमन्
—श्रीगिता जी

— — —

म०—ततस्तद्विषाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वा- सनानाम् ॥८॥

२—जिसका कर्म 'दुः' वश्या ही विचार है ॥

७ प्र० है भगवन् । योगी का अज्ञान (अविद्या) मिट जान से उसमें किसी प्रकार के कर्मों का संबंध नहीं रहता है । पान्थ जिनका कर्मों से लगाव है अथवा योगी नहीं है उनमें अच्छे बुरे कर्मों में क्या होता है ? प्रत्येक कर्म को ध्यान कर अप्रत्यक्ष आशय क्या मानें ?

७. सौम्य ' जैसा कर्म होते हैं वैसा ही जिन के भीतर सम्बन्ध (उन ही वासनाएं इच्छाएं) सम्प्रति होती ही रहती हैं (इच्छा होती रहती हैं) वे ही इच्छाएं अनेक प्रकार की होने से अनेक प्रकार के कर्मों में अपने अपने कर्मों को कर आगे बढ़ाती हैं । यो ही वासनाओं

मे जन्म कर्म और जन्म कर्म में हृद्भाग जो वह
अज्ञानचक्र चलता ही रहता है ॥

सू०—जातिदेशकालव्यवहितानामप्यातन्तर्य-
स्मृतिसंस्कारयो रेकरूपत्वात् ॥६॥

२—चावे जणी जगा' चावे जर्गा जग (यानि) न चावे जणी
वगत में या विचार ने कर्मों की सकल जुटी ही है ।

(५) प्र०—कर्मों के संस्कार और संस्कार (स्मृति) में कर्म मानने
में प्रत्यक्ष में कर्म का कारण कोई संस्कार नहीं पाया
है तब संस्कार बिना ही कर्म होता है यह मानना
क्या हर्ज है अतः प्राणय सही अभिप्राय है ।
क्योंकि कर्म और प्राणय एक ही प्रमाण है
साथ ही जुग हुआ नहीं योगता ।

सू०—तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥१०॥

२—ठेठ शूँ ही या विचार कर्मो रो शौंकल गोलमटोऊ है ।
 क्यूँके मुख री चावना ठेठ शूँ ही है, ने ई शूँ ही विचार कर्म री
 शाकव है ।

(१) प्र०—तत्र मङ्गलर स्मृति (उच्छ्वा) किससे होती है ? क्योंकि
 कर्म उच्छ्वा से होते हैं, तो उच्छ्वा किससे होती है अर्थात्
 आशय बिना कर्म नहीं, तो आशय किससे अर्थात्
 आशय से कर्म होते हैं तो आशय किससे होते हैं ?

उ०—उच्छ्वा (मङ्गलर) अपनाति है अर्थात् उच्छ्वा का पालन
 कारण कोई नहीं है । क्योंकि सुरा में प्रवृत्ति और दुःख
 में निवृत्ति जीव मात्र में जन्म रा ही पावी है ।

सू०—हेतुकलाश्रया तन्मन्त्रैः समुद्गीतत्वादेपामभावे
 तदभावः ॥११॥

३०—यद्यपि वागना अनादि है तो भी अनन्त नहीं है। क्योंकि वागना का सग्रह हेतु, फल, आश्रय आलवन से ही होता है। अर्थान इन चारों के आधार पर ही वासना (इच्छा) की स्थिति है, जब ये ही मिट जायें, तो निराधार वागना नहीं रह सकती है। हेतु (अविद्या) फल (भोग मोक्ष) आश्रय (व्यष्टि मन, अज्ञान युक्त चित्त) आलवन (विषय को कहते हैं इन में मुख्य चाहना वागना है अर्थान हेतु आदि मिटने से मिटे।

सू०—अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदा-
द्धर्माणाम् ॥१२॥

३ - छूटवा शै या विचार से शाश्वत मिट जाय या वात नही है। पण या सिमट जाय है, अर्णों से बोधवा से स्वभाव छूट जाय है।

(५) प्र०—ता वया एत चारों हेतु आदि का नाग (अभाव) हो जाता है या स्थावर होता है कि जिसमें वागना का नाग होता है अर्थान तब वया हेतु आदि मिट जाते हैं (नित्य धन मिटे।

सू०—ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥१३॥

०—देखे जी, ने नी देखो जी ई सब ही चीजों एक हीज चीज से है, नूँ समझणो ही गणी रो सिमटणो है ।

(१) ५—हे भगवान् ! नामना के कारण, हेतु (अविद्या) आदि का होना ही व्यक्त के मूल है, फिर उनका नाश भी नहीं होता, रूपान्तर ही होता है, यह भी आप कहते हैं ना फिर वानो बातें कैसे हो सकती हैं अर्थात् वागना क्या सिद्धे ?

०—हे शिष्य ! प्रकृति ही आविनाशी कही गई है, वही प्रकृति रूप अणु रूप से जान पर भी है, प्रकृति ही । तथा हि विगुण ग रजित कौटु यस्तु नहीं है और यो प्रकृति-सय ही सब समझ लने से अविद्या आदि होकर भी आता नहीं गती जाने अर्थात् ये हेतु आदि गुण ही है प्रकृति ही है, यो जानना चाहिये ।

सू०—परिणामैकत्वाद्वस्तुचक्षुषम् ॥१४॥

ही सब है, यह बात कैसे समझ में आसकती है अर्थात् अनेक कैसे ?

- उ० सब अग्नीर में प्रकृति के स्वरूप का ही पाते हैं । छादि में भी प्रकृति ही के स्वरूप में थे वर्तमान में भी वही रूप है, ज्यों सृत्तिका ही प्रथम और अन में भी सृत्तिका ही होने में वर्तमान में भी वह सृत्तिका ही है । हमसे एक ही वस्तु है अनेक नहीं ।

— — —

०-वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विविक्तः पन्थाः॥१५॥

२-एक ही चीज है ना भी मन रा त्यागपणा में असाध्य है (ज्यू—‘आगल्ल्या में गोली धरि तर्जनी प म यसा १३ ॥ १३ वनर वर) ।

१ प्र०—जा सब एक ही वस्तु पकति ही है ही सत्ता २२ । वयो तीसरी है ?

सू०—न चैकचित्ततत्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा
किं स्यात् ॥१६॥

२—वा एक चीज मन री वणाई थकी नी' है, क्यूँके मन नी
रे' तो भी वातो रे' हीज ।

(५) प्र०—तब तो जो हमारा चित्त है, वही वस्तु है, अर्थात् चित्त
ही वस्तु है, यही मान लेने में क्या दोष है । तब अनेक
चित्त क्यों माने अर्थात् निर्माण चित्त (अनेक चित्त-
क्यों माने) अथवा चित्त ही वस्तु क्यों न माने ?

उ०—हमारा चित्त ही वस्तु नहीं हो सकती । क्योंकि किसी
वस्तु को हम देखना छोड़, अन्य वस्तु को देखने लग
जायँ, तब क्या वहाँ वस्तु कुछ भी नहीं होती है ?

सू०—तदुपरागापेक्षित्वाचित्तस्य वस्तुज्ञाता-
ज्ञातम् ॥१७॥

२—अणी री चलको मन पे पड़वा शू मन में दीखणो, ने नी
दीखणो व्हें' है ।

(५) प्र०—तब वस्तु कभी मालूम होती है और कभी वह क्यों
नहीं दीखती अर्थात् तब निर्माण चित्त मानने में क्या
अविज्ञता है ?

३० वस्तु का प्रतिबिम्ब पडने से वस्तु चित्त में ज्ञात कही जाती है और चित्त में वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं पडने से अज्ञान कही जाती है अर्थात् निर्माण चित्त से ही वस्तु ज्ञान अज्ञान है ।

मृ०—सदाज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥१८॥

२—मन न देखवा बाळा ने मन से देखणो, ने नी देखणो ना ही मना ही लाग है । दयेंके अणी देखवा बाळा से कधी हेरफेर ना हो है ।

(५) प्र०—नव ना जानना नहीं जानना चित्त ही का धर्म हुआ ?

२०—ये जानना और न जानना जा चित्त की वृत्तियें हैं, ये पुरुष से ही जानी जाती हैं, यद्यपि अन्य विषयों का प्रभु चित्त हैं, तथापि उससे जानने न जानने को भी सदा पुरुष पर हम जानता ही रहता है ।

मृ०—न तत्स्वाभावं दृश्यत्वात् ॥१९॥

उ०—यह चित्त स्वयं ही दीखने वाला है, तो फिर यह कैसे देख सकता है ।



सू०—एकसमये चोभयानवधारणम् ॥२०॥

२—एक शूँ देखवारो ने दीखवारो दो ही काम लारे नी व्हे' शके ।

(५) प्र०—देखना और दीखना दोनो ही काम यही एक ही चित्त कर लेगा ?

उ०—एक साथ दो काम एक से नहीं हो सकते, दीखने वाला, देखने वाला नहीं हो सकता और देखने वाला दीखने वाला नहीं हो सकता (चित्त दीखता है तो देखता नहीं और देखता है तो दीखता नहीं है) ।



**सू०—चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसंगः स्मृति
सङ्करश्च ॥२१॥**

२—मनने देखवावाळो फेर दूसरो मन मानां, तां या लमटेर परा नी व्हे' नै याद भी नी रे' ।

(५) प्र०—तब एक दूसरा चित्त उस चित्त को देखने वाला मान लेने में क्या दोष है ? पुरुष ही मानने में क्या लाभ ?

३८—एक चित्त को दूसरा चित्त देखने वाला और फिर वह भी दीप्तता है, इसलिये उसको भी देखने वाला और यो और और करने में कभी टिकाव न रहेगा और जब देखने वाला ही कायम न होगा तो स्मृति क्या ठहरेगी अर्थात् स्मृति भी न रह सकेगी । क्योंकि स्मृति किसी स्थायी के आधार पर रहती है अर्थात् एक चित्त नश्य वैशं हो जितने कल्प जायें मय ही नश्य ही — । तब इनकी कल्पना व्यर्थ क्यों करनी और उद्वेग क्यों ही निश्चय न हुई, तो कल्पना करने वाला दोन ही— इसका भी पता न चलेगा ।

सू०—चित्तेरप्रतिसंक्रमायास्तदावगपत्तो रश्-
बुद्धिसंवेदनम् ॥२२॥

२—मन देखवावाला से स्वभाव मगप से लयने देखा-
वण है पण देखवावाला से तो स्वभाव वणा से निवृत्त
है ही तो ।

(१) प्र०—तो क्या देखना, सुनना समझना सब एकरूप ही रहता
है या चित्त ही करता है ?

उ०—तब ज्ञान चित्त की तरफ झुकता जाता है और वह मुक्त केवल रूप होता जाता है ।

सू०—तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥२७॥

२—यूँ चित्त में पे'ली री वार्ता भी बच्चे बच्चे याद आया जाय ।

(५) प्र०—यो चित्त के आत्म ज्ञान की तरफ झुकने से और निर्मल होने से क्या उसे अन्य कुछ भी ज्ञान नहीं रहना है ?

उ०—पहले संस्कारों के कारण से बीच बीच में चित्त में अन्य याद आया करते हैं, जिनसे योगी व्यवहार भी करता रहता है ।

सू०—हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥२८॥

२—पण बी तो अणी साँची समझ रे आगे ठे'र नी शके ।
अतरा विचार गी नाई ई भी साँची समझ शूँ हीज मिट जाय ।

(५) प्र०—इन संस्कारों को भी रोकने का क्या उपाय है अर्थात् संस्कारों की अत्यन्त निवृत्ति कैसे होती है ?

उ०—जैसे क्लेशों का नाश कहा था, वैसे ही इन संस्कारों का भी नाश होता है अर्थात् ध्यान से नाश किये जाते हैं ।

सू०—प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वधाविवेक-
ख्यातेर्धर्म मेघः समाधिः ॥२६॥

२—जदी अणी सर्वाची समझ में भी मोह मिट जाय उदी तो वशें दूसरा विचार से आवणो विलकुल रुक जाय, ने केन्द्र में सर्वाची समझ का विचार हीज में जाय ।

(५) प्र०—तब तो मन्त्र ही सब सम्प्राप्ति का मिटाने में किं ज्ञान घना करना चाहिये ?

उ०—ज्ञान में भी दृष्टा मिट जाने से 'परमेश्वर' नाम की समाधि होती है. इसमें मन्त्र ज्ञान ही सबकुछ होता है यही अमर अद्वितीय विवेक ग्याति होती है ।

सू०—ततः क्लेशवर्म निवृत्तिः ॥२७॥

२—जदी दूसरा विचार (धर्म) विलकुल मिट जाय

(५) प्र० इस प्रकार धर्ममेघ समाधि से फिर क्या होता है ?

उ० धर्ममेघ समाधि न गद होता होता करने से निवृत्ति होजाती है ।

मू०—तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्या-
ज्ज्ञेयमल्पम् ॥३१॥

२—पछे अणी साँची समझ रे रोकवावालो कोई विचार
नी रे वा शूँ ई रे जाणवो बाकी नी रेवे, केवल अपार सुख ही
सुख रे' जाय है ।

(५ प्र०—फिर उमके चित्त की क्या दशा होती है ?

उ०—तब क्लेश कर्मों के आवरण से रहित ज्ञान (चित्त)
अनन्त हो जाने से सब ही ब्रह्माण्ड तुच्छ अल्प ना
कुछ होजाता है अर्थात् निर्माण चित्त अपने असली
चित्त में मिल कर अनन्त हो जाता है ।

मू०—ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसम्पत्तिगु-
णानाम् ॥३२॥

२—अब कोई काम बाकी नी रे'वा शूँ हेर फेर छे'णी मिट
जाय है ।

५ प्र०—फिर क्या होता है ?

उ०—तब गुणों का कार्य समाप्त हो जाने में गुणा के
तद्वतीना होना मिट जाता है अर्थात् एक ही प्रकृति

ही प्रकृति रह जाती है अर्थात् गुणों का क्रम बन जाता है ॥

मृ०—क्षणाप्रतियोगी परिणामापरान्तनिश्चायः
क्रमः ॥३३॥

२—हर फेर एक तरफ़ शौ दमरी तरफ़ आता है।
ने या फेर फेर हरक चीज में नया जन्म होता है।
जाय है ॥

(५) प्र० गुणों का क्रम क्या है ?

उ० समय का भान मिले वर वस्तु या तत्त्वों का
मिटना ही गुणों का क्रम मिलना है और जो
भान और गुणों की तत्त्वों की वातावरण है।

मृ० पुरुषार्थ शून्यानां गुणानां प्रतिप्रत्ययः कैवल्य
स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिगति ॥: १॥

- उ० कृत कार्य होने से गुणों का फेलना मिटकर सिमट जाना अर्थात् सपूर्ण संसार एक प्रकृति मय होजाना ही मोक्ष है अथवा पुरुष का स्वरूपावस्थान वा चित्त-वृत्ति निरोध कहाता है अथवा यही परमपद कहाता है ॥

† समस्तोयग्रन्थ †



शुद्धिपत्र

पानारी	ओळमे	है	व्हे'णो चावे
०	१८	दिग्व	दिखे
	१९	दिग्वे	दिख
३	४	दूजो	दूजा
३	१०	आगळा	आगळी
४	१५	जयामे	जगमें
४	१७	भी व्हे'	भी न व्हे'
५	२४	वां	वाजे
६	१३	निकळा	निकळ
६	१६	अर्णा रा	अर्णा रो
७	१८	आश्रय	आश्रम
९	४	ना	मो
९	१२	मत	मत
९	२०	गूं	गूं
१०	७	गनीपिणम	मर्त्त.पिणाम
	७	गानम	गाननम
११	११	हीन नी	हीन नी
११	१	सदग	सर्वदा
११	९	धम	धर्म
७	७	गुण रा	गुण रो
७	१९	देवदावतो	देवदादाता
१	१३	रा ही	रा ही

पानारी	ओळमे	है	व्हे'जो चावे
८	३	वाळा	वाळो
१०	१२	ठिकाण	ठिकाणे
११	५	और वी	और वा
११	११	अणजाण्या	अणजाण्या
१२	११	नामहीन	नामहीज
२०	१३	प्रमाणे	प्रमा ग
१४	१७	मे'म	भे'म
१७	१६	द्वंद्वो रो	द्वंद्वो रो १
१८	१९	मान	भान
१९	८	मरणो	मिटणो
२०	१५	स्पद	स्पद
३३	१९	असंप्रज्ञाय	असंप्रज्ञात
३३	१९	थका	थकी
३३	२३	उद्दत्रे	उल्ले
४२	४	मिटन	मिनट
४२	१९	प्राणि	प्रणि
४७	१७	(पुरुषांपा)	पुरुषाँ
४९	१५	कलि	काले
५२	१	प्रश्यंती	पश्यंती
५४	१७	और	और
६०	१३	कई-न-कई	कई-न-कई
९८	१७	उवा	उवा
१००	११	शाम्न	शान्न
१०३	४	छोटी	छेटी

पानागी	ओळमे	है	व्हे'णो चावे
१०३	७	आयो	आपो
१०४	१८	मर्वात्कृष्ट	सर्वोत्कृष्ट
१०६	९	तीर्णा	तीर्णा
१०९	५	कल	काल
१०९	२१	रना	करना
११०	१	समाधि	स समाधि
१११	२०	तन्	तनु
११३	१९	तनु	तनु
११७	१३	तेवा	तैवा
१२७	१०	द ख	दु.ख
१२६	१२	घविश	एविश
१२६	१३	मे	फे
१२७	६	द्रष्टा	द्रष्ट
१२८	१५	लिग	लिङ्ग
१३०	११	नष्ट	नष्ट
१६२	१९	तद्विद्या	त विद्या
१२५	६	स्तान्तिदष्टा	स्तन्तिष्टा
१२५	४	समाधीव	समाधाव
१२६	९	दा' रला	वा' रला
१२८	१	जाति	रति जाति
१२९	१५	पति	प्रति
१३१	८	तत्त्वर्म	सत्त्वर्म
१३२	११	तत्त्वदोष	ता नम्योष
१३२	१२	छट	छूट

पानारी	ओळमे	है	व्हे'णो चावे
१४४	१	शौचात् झाङ्ग	शौचात् झाङ्ग
१४४	११	ग्ये	ग्रये
१४५	५	त्तम	त्तम
१४५	१२	शुद्धितयात्	शुद्धितयात्
१४७	२	सनभा	समभा
१५०	७	चोथे	चोथो
१५०	१८	पानो	पानौ
१५२	१	सप्रयो	सम्प्रया
१२८	५	निर्मास	निर्भास
१६४	७	चिन्ता	चित्ता
१७१	१६	परिधामा	परिणामा
१७७	२३	भर्म	धर्म
१७७	८	मैत्रादि	मैत्र्यादि
१८०	१	व्यूहाज्ञा	व्यूहज्ञा

प्रार्थना—

शीघ्रता मे शुद्धिपत्र पुरा नी वण शक्यो है, मा अर्गा
अवरात्र गी ज्ञमा अवश्य मिलणी चाये ।

सपादक —